ॐ ह्रीं

कौल-कल्पतरु

चण्डी

ॐ ह्रीं

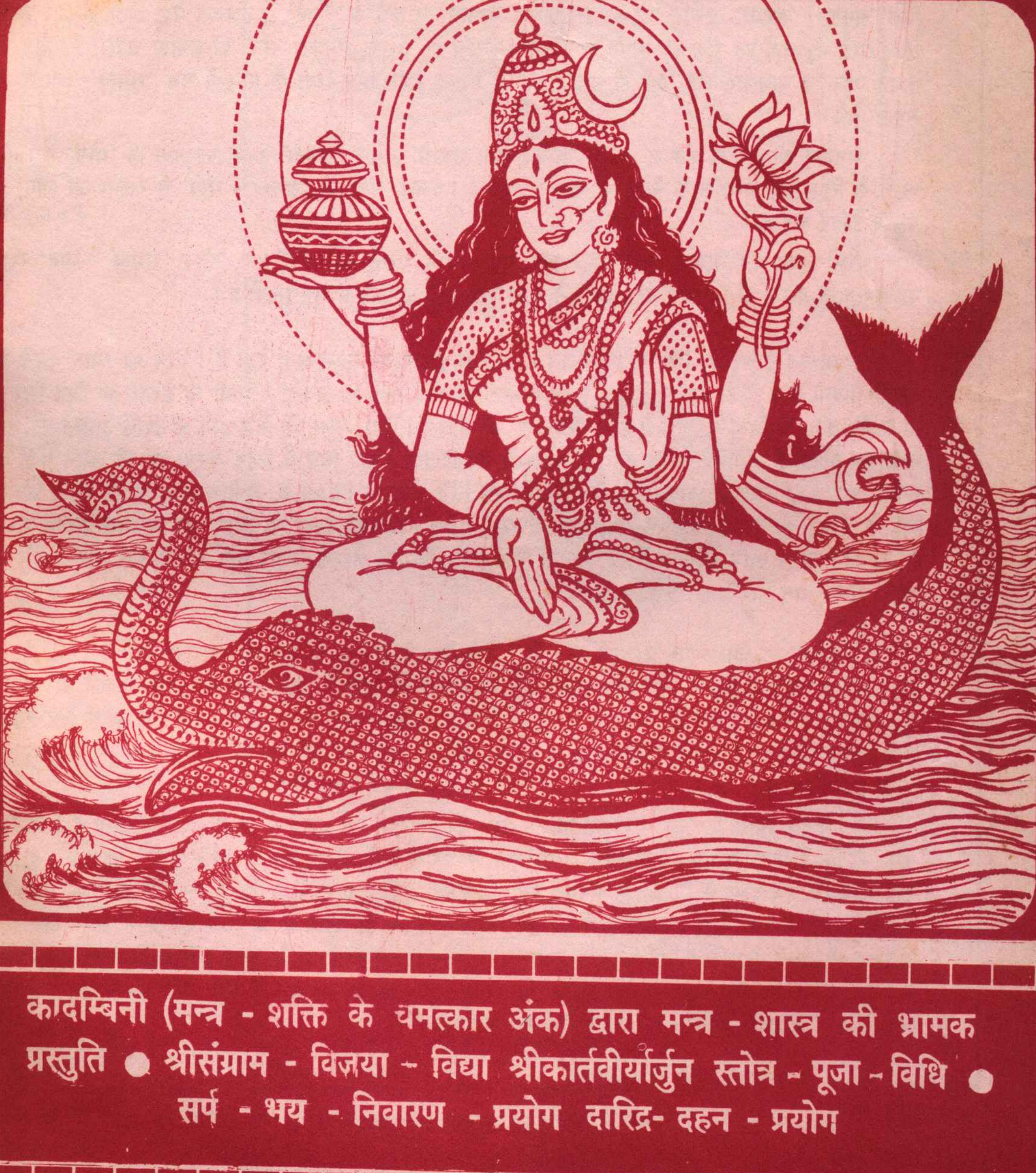

कादम्बिनी (मन्त्र - शक्ति के चमत्कार अंक) द्वारा मन्त्र - शास्त्र की भ्रामक प्रस्तुति ● श्रीसंग्राम - विजया - विद्या श्रीकार्तवीर्यार्जुन स्तोत्र - पूजा - विधि ● सर्प - भय - निवारण - प्रयोग दारिद्र- दहन - प्रयोग

ईश्वर- प्राप्ति का मार्ग

इस प्रकृति के प्रवाह में यदि हमारी नाव किसी ऐसे किनारे पर लगे, जहाँ खाना - पीना बहुत अच्छा मिलता हो और फिर बहती- बहती वह किसी मरुभूमि के किनारे लग जाए, जहाँ सब सूखा - ही - सूखा हो, तो उस समय यदि 'मन' को सहन करने का अभ्यास होगा, तो दुःख नहीं होगा। 'मन' में यही आएगा कि फिर कोई अच्छा किनारा मिल जाएगा। **'समत्व'** अर्थात् मन का सन्तुलन। **'समत्व'** न होने से 'मन' में हलचल पैदा होती है और व्यक्ति सीधे रास्ते पर नहीं रह सकता। हमारे सामने जैसा संयोग हो, उसके अनुकूल 'मन' को बनाना चाहिए। संयोग को अपने 'मन' के अनुसार कोई योगी ही बना सकता है। बाह्य दर्शन और चित्त के मध्य में मन **'समत्व'**- रूप से रह सकता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि —**'समत्वं योग उच्यते'** अर्थात् **'समत्व'** रखने का नाम ही **'योग'** है। योग करने के लिए नाक बन्द करके बैठने की जरूरत नहीं है। केवल 'मन' को **'समत्व - भाव'** में रखना आ जाए, तो मनुष्य ईश्वर बन जाए।

सभी समय मन **'समत्व'** नहीं रख सकता, यह सत्य है, परन्तु जितना हो सके, उतना **'समत्व - भाव'** रखने का प्रयत्न तो करना ही चाहिए। ऐसा करने से कभी बड़ी भारी आपत्ति से बच सकते हैं।

अनन्त ईश्वर का चित्र में ध्यान करना, अनन्त ईश्वर को सान्त बना देता है। चित्र का ध्यान करने से, अपनी भावना चित्र में ही रह जाती है। उसमें अनन्त का भाव नहीं आ सकता। किसी भी ईश्वर का चित्र सिर से लेकर पैर तक, दो बिन्दु के बीच में होने से 'सान्त' हो जाएगा। शिव - लिंग के गोल होने से उसमें अनन्त का भाव माना जा सकता है क्योंकि उसमें आदि - अन्त कुछ नहीं दिखता। यदि चित्र में ध्यान करना हो, तो उसमें गुणों की भावना भर कर, उसको अन्तर में स्थापित करके, वह चित्र चलता - फिरता है, ऐसी कल्पना करनी पड़ेगी अर्थात् चित्र में, ईश्वर की चलती - फिरती देह का ध्यान करना पड़ेगा। **जिसको ईश्वर के स्मरण का अभ्यास** प्रारम्भ करना है, उसको चित्र में ध्यान करने से उसकी भावना चित्र में ही स्थिर हो जाएगी, बाहर नहीं जाएगी और अनन्त प्रभु का ध्यान 'सान्त' बन जायगा।

'मन', प्रत्येक व्यक्ति का एक अंग है। जैसे बिजली के लट्टू में तार की जरूरत होती है, वैसे ही इस लट्टू- रूपी मानवीय शरीर में 'मन' की जरूरत है। जो मानने की शक्ति है, वही 'मन' है। जैसे बिजली की शक्ति से लट्टू का तार जलता है, वैसे ही 'मन' के ऊपर अस्तित्व का प्रकाश पड़ने से 'मन' में स्फूर्ति पैदा होती है। लट्टू का तार जितना मोटा होगा, उतना ही उसमें शक्ति बढ़ेगी। वैसे ही 'मन' पर अस्तित्व का जितना काश पड़ेगा, उतना ही 'मन' निर्मल बन कर, अपने में काश ग्रहण करने की शक्ति प्राप्त कर उन्नत होगा।

प्रत्येक व्यक्ति के 'मन' पर अस्तित्व के काश का परिणाम एक दूसरे से अलग - अलग होता है। किसी में कम, तो किसी में ज्यादा और उस काश के परिणाम से प्रत्येक व्यक्ति की मानने की शक्ति में भेद होता है। इसलिए कोई दो व्यक्ति एक दूसरे के विचारों से सहमत नहीं हो सकते। यदि एक दूसरे से मेल है, तो एक दूसरे का सहन कर लेने के कारण है। दो में से एक को दूसरे का कहा स्वीकार करना ही पड़ता है और दब कर कभी अपने विचारों से प्रतिकूल भी जाना पड़ता है। यदि भटकता हुआ 'मन' स्थिर हो जाए, तो उसके ऊपर अस्तित्व का पूर्ण काश पड़ता है। इस दुनिया में जन्म पाकर प्रत्येक मनुष्य को अपने 'मन' को उन्नत बनाने के लिए ऐसा प्रयत्न करना चाहिए, जिससे 'मन' के ऊपर अस्तित्व का प्रकाश पूर्ण रूप से पड़े।

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग—२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ५

वार्षिक शुल्क : रु० ५५
आजीवन शुल्क : रु० ५५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक/समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ५००/३००
आजीवन : ५०००/३०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट कौल-कल्पतरु चण्डी के नाम से चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद के पते पर भेजें।

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग—२११००६

हिन्दू - धर्म के ज्ञान - मय क्रिया-पक्ष
की
'राष्ट्र-भाषा' में शोध-पूर्ण प्रस्तुति

कौल-कल्पतरु चण्डी

वर्ष ५१] [अङ्क १०
पौष, 'पार्थिव' सम्वत्, २०४९ वि० जनवरी, १९९३

ॐ

इस अंक में

- गङ्गा-महिमा ... २९०
- कादम्बिनी के 'दीपावली-विशेषाङ्क' की समीक्षा ... २९२
- परोपकार की भावना और 'साधन-माला' ... २९६
- 'साधना-शिविर' रज-रप्पा—एक रिपोर्ट ... २९७
- 'रज-रप्पा तीर्थ'—एक संस्मरण ... ३०५
- रज-रप्पा का साधना-शिविर (पत्रकारों की दृष्टि में) ... ३०६
- अघोरेश्वर अवधूत भगवान् राम ... ३१०

गंगा-गरिमा

• श्रीयुत सीताराम सक्सेना, ८४ सी० बाघम्बरी गद्दी, प्रयाग—(उ० प्र०)

पतित-पावनी **श्री गङ्गाजी** भारत की प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता की प्रतीक तथा भारतीय जनता की सर्व-प्रिया पवित्र नदी हैं। इनकी गरिमा अति श्रेष्ठ, अतुल एवं अपार है, जिसका पूर्ण वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता? **श्री गङ्गाजी** पतितों को पवित्र करनेवाली तथा पवित्रों को भी अति पवित्र करनेवाली हैं। **'श्री गङ्गा-सहस्र-नाम स्तोत्र'** में इन्हें केदार-शिखरावासा, ब्रह्म-रन्ध्र-निवासिनी, चिच्छक्ति, परमेश्वरी, सर्व-लोक-मयी, सर्व-शास्त्र-मयी, धर्म-शास्त्र-प्रबोधिनी, सीता-राम-सुसेविता, श्री त्रिपुर-सुन्दरी आदि नामों से सुशोभित किया है। इनके अनुग्रह से ब्रह्म-स्थिति प्राप्त होती है। श्री गङ्गाजी का दर्शन ही महा-पुण्य-दायक है—**'गङ्गे तव दर्शनात् मुक्तिः।'** इस प्रसिद्ध कथन का पारमार्थिक रहस्य उन्हीं महात्माओं को ज्ञात हो पाता है, जिन्होंने समाधि व तुरीयावस्था में **श्री गङ्गाजी** के दर्शनों की अपरोक्ष अनुभूति की हो। कहा जाता है कि साक्षात् पर-ब्रह्म ही पृथ्वी पर **श्री गङ्गाजी** के शुभ नाम से अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष चारों प्रकार के पुरुषार्थों को देने के लिए जल-रूप से बह रहे हैं। शक्ति और शक्ति-मान में भेद न होने से **श्री गङ्गाजी** परमेश्वर-रूपिणी ही हैं।

श्री गङ्गोत्री - क्षेत्र हिमालय-पर्वत के उस हिम-शिखर पर स्थित है, जहाँ से मानव को **श्री गङ्गाजी** अवतरित होती हुई सर्व-प्रथम दृष्टि-गोचर होती हैं। इस साक्षात् उद्गम-स्थान को **गोमुखी** कहा जाता है, जो गङ्गोत्री से लगभग ११ मील दूर है। उद्गम-स्थान से निकलने के बाद **श्री गङ्गाजी** की अनेक शाखाएँ हो जाती हैं, जो विविध स्थानों पर आपस में मिलकर **सङ्गम** बनाती हुई आगे बढ़ती जाती हैं। 'हरिद्वार' से सब धाराएँ एक होकर मैदानों में प्रवाहित होती हैं। इसी एक धारा को **श्री गङ्गाजी** कहा जाता है। 'हरिद्वार' से ऊपर 'उत्तराखण्ड' में स्थित मुख्य शाखाओं के नाम हैं—**मधु-गङ्गा, क्षीर-गङ्गा, स्वर्ग-द्वार, सुशरोनी, मन्दाकिनी, केदार-निलया, सरस्वती-गङ्गा, अलकनन्दा, देवी गङ्गा, वसु-धारा, ऋषि-गङ्गा, गरुड़-गङ्गा, धौली-गङ्गा, त्रिपथगा, जाह्नवी, भागीरथी** आदि। ये सभी शाखाएँ समान रूप से पवित्र हैं। इनके तट पर स्थित सभी स्थान **तीर्थ** हैं। प्रमुख तीर्थों, कुण्डों एवं आश्रमों के नाम हैं—**ऋषिकेश, देव-प्रयाग, श्रीनगर, रुद्र-प्रयाग, कर्ण-प्रयाग, गङ्गोत्री, यमुनोत्री, नन्द-प्रयाग, चमोली, पीपल-कोटी, विष्णु-प्रयाग, पाण्डुकेश्वर, अलका-पुरी, ब्रह्म-कपाल, हरि-प्रयाग, गुप्त-प्रयाग, बदरीनाथ, केदारनाथ, जोशी-मठ, वशिष्ठ-गुफा, व्यास-गुफा, हेम-कुण्ड, नारद-कुण्ड, गौरी-कुण्ड (गर्म पानी का कुण्ड), रेत-कुण्ड, शिव-कुण्ड, हेम-कुण्ड एवं कण्व-आश्रम। भगवान् शिव** के अनेक सिद्ध मन्दिर हैं, जिन्हें **मध्य-महेश्वर, तुङ्गेश्वर, रुद्रेश्वर एवं कल्पेश्वर** कहते हैं।

केदार-मण्डल में श्री गोरखनाथ जी का आश्रम है। अन्य क्षेत्रों के नाम हैं—**नारायण-क्षेत्र, भिलङ्गना-क्षेत्र, बगला-क्षेत्र** आदि। कहा जाता है कि पाण्डवों ने महा-भारत में विजय पाने के पश्चात् आत्म-शान्ति के लिए **केदारनाथ मन्दिर** में शिव-पूजा की थी। **पाण्डुकेश्वर** के पूर्व में लगभग चौदह मील दूर एक विश्व-प्रसिद्ध **फूलों की घाटी** है, जहाँ श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने तप किया था। वहाँ एक 'गुरुद्वारा' स्थापित है। 'केदार-मण्डल' के मध्य **महेश्वर** में एक मन्दिर है, जहाँ श्री शङ्कराचार्य जी ने मण्डन मिश्र को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। 'बदरीनाथ' से लगभग दो मील पर एक **व्यास-गुफा**

है। कहा जाता है कि 'श्री वेदव्यास' जी ने यहीं 'महा-भारत' की रचना की थी। **श्री सरस्वती गङ्गा** के तीर पर **महा-काली, महा-लक्ष्मी** तथा **महा-सरस्वती** के प्रसिद्ध स्थान हैं।

श्री गङ्गाजी एवं इनके किनारे बसे तीर्थों, धामों तथा सम्बन्धित क्षेत्रों और मण्डलों का विशद विवेचन शिव महा-पुराण, स्कन्द-पुराण, पद्म-पुराण, अग्नि-पुराण, कूर्म-पुराण, मत्स्य-पुराण, मार्कण्डेय-पुराण, ब्रह्म एवं नारद-पुराण में प्राप्त होता है। **पवित्राणां पवित्रं तु, मङ्गलानां तु मङ्गलम्। महेश्वर-शिरोभिष्टा, सर्व-पाप-हरा शुभा ॥** (मत्स्य-पुराण, अ० ४/८०) अर्थात् भगवान् शङ्कर के शिर से गिरने-वाली **गङ्गा** सबसे अधिक पवित्र, सबसे अधिक मङ्गल-कारिणी, शुभ और सब पापों को नाश करनेवाली हैं। '**.....तत्काल-कृत-पापस्य, क्षयो भवति निश्चितम्**...' (शिव-महा-पुराण अ० १२।३०-३२) अर्थात् **श्री गङ्गाजी** के तीर्थ-स्नान से पापों का शीघ्र ही क्षय हो जाता है। वेदों में तीर्थों की महिमा का उल्लेख है। यथा—'...**नमस्तीर्थाय च** ...' (यजुर्वेद, अ० १६।४२) अर्थात् तीर्थादि में विद्यमान देवता को नमस्कार है। '**ये तीर्थानि प्रचरन्ति** ...' (यजुर्वेद, अ० १६।६७) अर्थात् श्री रुद्र देवता तीर्थों में विचरण करते हैं। '...**तेभ्यो नमोऽस्तु** ...' (यजुर्वेद अ०, १६।६६) अर्थात् उन्हें नमस्कार है। इस प्रकार रक्षा एवं कल्याण के लिए श्री रुद्रदेव को प्रणाम किया है।

श्री गङ्गोत्री-क्षेत्र एक पवित्र पुण्य-तीर्थ है और इसे भोग व मोक्ष—दोनों का देनेवाला बतलाया गया है। यह पतित-पावनी **श्री गङ्गाजी** के जल-सेवन का ही फल है। **श्री गो-मुख** के विषय में कहा गया है कि इसके सदृश्य **तीर्थ** भू-लोक में अन्यत्र नहीं है। यह साक्षात् श्री लक्ष्मीजी की क्रीडा-भूमि है। 'उत्तरा-खण्ड' के सभी तीर्थ, नदियाँ, प्रपात, उच्च-पर्वतीय चोटियाँ और उनमें स्थापित शिव-लिङ्ग, दुर्गा-पीठ और सिद्ध-पीठ केवल तीर्थ-यात्रियों, संन्यासियों व धर्मावलम्बियों के लिए ही लुभानेवाले स्थान नहीं हैं, वरन् विज्ञान-वेत्ताओं और पर्यटकों के लिए भी अत्यन्त आकर्षण के केन्द्र हैं। **श्री गङ्गोत्री-क्षेत्र** व **श्री गो-मुख** की कान्ति, शान्ति-मय वातावरण एवं प्राकृतिक सौन्दर्य के बाहुल्य का मनुष्य के मन पर ऐसा विलक्षण प्रभाव पड़ता है कि वह मुग्ध रह जाता है और एकाग्र-चित्त होकर अन्तर्मुखी वृत्ति के द्वारा समाधि की ओर अग्रसर होने लगता है। हृदय उल्लास से परिपूर्ण होने लगता है। शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से हिमालय के **उत्तराखण्ड** का प्रभाव मनुष्य को 'निवृत्ति' की ओर उन्मुख करता है तथा इस संसार की असारता का ध्यान दिलाते हुए 'मोक्ष-प्राप्ति' की ओर ले जाता है।

दार्शनिकों का मत है कि 'कार्य' के ज्ञान से उसके 'कारण' की स्मृति होती है। इसी प्रकार प्राकृतिक सौन्दर्य के दर्शन से उसके कारण—'ब्रह्म' की स्मृति होती है। अतः ऐसे रमणीक स्थानों में, जहाँ शान्ति-मय वातावरण हो तथा प्राकृतिक सौन्दर्य की बहुलता हो, कोई मनन-शील मानव समा-धिस्थ होकर 'ब्रह्म' में निमग्न हो जाय, तो क्या आश्चर्य! सौन्दर्य 'ब्रह्म' का ही स्वरूप है। 'ब्रह्म' का सौन्दर्य प्रकृति में ही भासमान होता है। सब सत्यों का महा-सत्य, चेतनों का भी चेतन एवं सुन्दरों का भी सुन्दर—इस जगत् का बीज-भूत ब्रह्म ही है। यह दृश्यमान जगत् ब्रह्म से भिन्न सत्ता वाला नहीं है। 'ब्रह्म' ही प्रकृति के माध्यम से सब प्राणियों को यथा-योग्य आनन्द प्रदान करता है। इस प्रकार ब्रह्म-तत्त्व जाननेवाले 'श्री गङ्गाजी' के साक्षात् दर्शन से 'मुक्ति-लाभ' का अनुभव करते हैं और उनकी महिमा का गान करते हैं।

'कादम्बिनी' का विशेषांक :

मन्त्र-शक्ति के चमत्कार

• 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, प्रयाग (उ० प्र०)

नवम्बर, १९९२ का अङ्क प्रस्तुत करते हुए सम्पादक श्री राजेन्द्र अवस्थी ने लिखा है—

मन्त्र-विशेषाङ्क—इस वर्ष दीपावली के अवसर पर हमारी विशेष भेंट—

आगे **'समय के हस्ताक्षर'** के अन्तर्गत आप लिखते हैं—'**...पिछले कुछ वर्षों से 'दीपावली' के अवसर पर हम 'तन्त्र-विशेषाङ्क' प्रकाशित करते रहे हैं। 'तन्त्र' की अवधारणा आदि-काल से हमारे देश में रही है।...'दीपावली' का पर्व न केवल हमें ज्ञान की ज्योति देता है, बल्कि रहस्य-मय विद्याओं को प्राप्त करने के लिए सारी तान्त्रिक प्रक्रिया भी इसी दिन की जाती है। कहा जाता है कि यह सिद्ध पर्व है।...**'

अवस्थी जी ने 'तन्त्र की अवधारणा' को स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं समझी। 'तान्त्रिक प्रक्रिया' से क्या आशय है, यह भी स्पष्ट नहीं किया। 'दीपावली' कदाचित् आप 'सिद्ध पर्व' नहीं मानते। उसे ऐसा कहा जाता है, इसलिए आपने भी उल्लेख कर दिया ! ऐसी दशा में अन्य 'सिद्ध पर्वों' के प्रति आपका ध्यान कैसे जा सकता है !! 'दीपावली' के अतिरिक्त कितने ही 'सिद्ध पर्व' होते हैं, जिन्हें 'तान्त्रिक प्रक्रिया' में रुचि रखनेवाले सामान्य जन भी जानते हैं।

'तन्त्र' वास्तव में भारत के एक विशेष शास्त्रीय ज्ञान का बोधक शब्द है। तन्त्र-सम्बन्धी कितने ही ग्रन्थ आज देश में उपलब्ध हैं, जिनका अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। उदाहरण के लिए यहाँ **'महा-निर्वाण तन्त्र'** का उल्लेख करना उचित होगा। सर जॉन वुडरफ ने इसी का अंग्रेजी अनुवाद किया, जो 'ग्रेट लिबरेशन' नाम से प्रसिद्ध है। **'कुलार्णव तन्त्र'** पर तो 'स्वीडन' की **'उप्साला यूनिवर्सिटी'** में श्री गुन्नार एण्डर्सन नामक सज्जन ने शोध किया और उसे टीका-सहित स्वीडिश भाषा में प्रकाशित भी कराया। **'तन्त्र'**-सम्बन्धी इसी प्रकार के अनेक ग्रन्थों का उल्लेख किया जा सकता है, किन्तु 'कादम्बिनी' के सम्पादक जी ने **'तन्त्र'** शब्द को **'तान्त्रिक प्रक्रिया'** से सीमित ही नहीं कर दिया, इस **'प्रक्रिया'** को स्पष्ट करने की कृपा भी नहीं की !

'तान्त्रिक प्रक्रिया' को स्पष्ट करना दूर रहा, आपने उसके सम्बन्ध में भ्रम ही उत्पन्न किया है क्योंकि अपने उक्त कथन के तुरन्त बाद आप लिखते हैं :

"...तन्त्र के सिवाय मन्त्रों की अपनी विशेषता है।..."

क्या **'तन्त्र'** की प्रक्रिया मन्त्रों के बिना हो सकती है ? यह एक बिना पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी जानता है कि **'तन्त्र'** से **'मन्त्र'** को अलग नहीं किया जा सकता। 'कादम्बिनी' के सम्पादक जी ने **'तन्त्र-शास्त्र'** को ध्यान में नहीं रखा। इसी से **'मन्त्रों'** के विषय में भी वे हास्यास्पद बातें लिख जाते हैं। पाठक भी उन बातों का आनन्द लें—

"...मन्त्र न तो प्रार्थना है और न आत्म-निवेदन का माध्यम...।"

अब बताइए, एक द्विज होने के कारण सम्पादक अवस्थी जी **'गायत्री-मन्त्र'** का जप तो करते ही होंगे। वह प्रार्थना नहीं, तो क्या है ? ऐसी भ्रामक बात लिखनेवाला **'मन्त्र'** की सही व्याख्या कैसे कर सकता है ! तभी तो आप लिखते हैं कि—

"...**मन्त्र शब्दों से बनते हैं और शब्द अक्षरों या वर्णों से ।...मन्त्र दो तरह के होते हैं—एक ध्वन्यात्मक, दूसरे कार्यात्मक । ध्वन्यात्मक मन्त्रों का कोई अर्थ नहीं होता ।...ध्वन्यात्मक मन्त्रों को बीज-मन्त्र भी कहा जाता है ।** "

उक्त व्याख्या से क्या कोई कुछ समझ सकता है ? उचित तो यह था कि पहले **'मन्त्र'** शब्द का अर्थ बताया जाता कि जिसका मनन करने से रक्षा होती है, उसे **'मन्त्र'** कहते हैं । फिर बताना चाहिए कि केवल अक्षरों या वर्णों से बननेवाले 'मन्त्र' **बीज-मन्त्र** कहलाते हैं । इन बीज-मन्त्रों का भी अपना अर्थ होता है, किन्तु 'कादम्बिनी' के सम्पादक जी कदाचित् इस बात को जानते नहीं हैं । तभी 'ॐ' के सम्बन्ध में उन्होंने ऊटपटाँग बातें लिख डाली हैं। लिखते हैं...

"...**'ओं'—इस एक मन्त्र को लें, तो इसकी व्याख्या करना व्यर्थ है ।** ..." क्यों व्यर्थ है ? क्योंकि आप जानते ही नहीं हैं । जानते होते, तो **'ॐ'** को **'ओं'** न लिखते । जब इस प्रख्यात **'प्रणव'** मन्त्र की व्याख्या को आप व्यर्थ मानते हैं, तब अन्य बीज-मन्त्र जो आपने लिखे हैं—**'ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं'** आदि, उनके विषय में आप क्या लिखते ! उनकी चर्चा करने का आपको साहस ही नहीं हुआ और तिब्बती मन्त्र **'ॐ मणि-पद्मे हुं'** की चर्चा कर बैठे !!

विषय को बिना जाने-समझे लेखनी चलाने से जो भ्रामक बातें पढ़ने को मिलती हैं, उनसे **'समय के हस्ताक्षर'** का यह पूरा आलेख परिपूर्ण है । सम्पादक जी का निष्कर्ष यह है कि "...**तन्त्र और मन्त्र में अन्तर है । तन्त्र विनाशकारी भी हो सकता है । मन्त्रों में ऐसी सम्भावना कम है ।** ..." कितनी भ्रम-पूर्ण बात अवस्थी जी ने लिखी है ! इसी प्रकार आपने पाठकों को जो सलाह दी है कि **'मृत्यु पर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती, इसलिए असाध्य रोगों के लिए व्यर्थ की दौड़-धूप से हम अपने पाठकों को रोकना चाहेंगे'**—यह सलाह भी सर्वथा हास्यास्पद है । मजे की बात यह है कि सम्पादक जी ने इसी विशेषाङ्क में कितने ही आकर्षक शीर्षकों के अन्तर्गत अनेक नाम-पते देकर असाध्य रोगियों को **'व्यर्थ की दौड़-धूप'** हेतु प्रेरित करने में कोई सङ्कोच नहीं किया है । यथा—

'आग की लपटों में काला बाबा—रोग से मुक्ति' (पृष्ठ ३०), **'अब तक वे लाखों रोगियों को ठीक कर चुके हैं !'** (पृष्ठ १५६), **'वे भटकती आत्माओं से मुक्ति दिलवाते हैं'** (पृष्ठ १६०), **'मन्त्र से प्रेत-मुक्ति'** (पृष्ठ १६७), **'तलवार की नोक से चिकित्सा'** (पृष्ठ २०६), **'मन्त्र-शक्ति से रोग - निवारण'** (पृष्ठ २१७) ।

इसी प्रकार अन्य 'शीर्षकों' से भी पाठकों को यही प्रेरणा मिलती है कि वे लेखकों या दिए गए पतों से सम्पर्क कर अपने या अपने प्रिय जनों को कष्ट से मुक्त कराने के लिए दौड़-धूप करें । इससे स्पष्ट है कि सम्पादक जी की उक्त सलाह ही सर्वथा 'व्यर्थ' है । उचित तो यह था कि जिन लेखकों या रोग-मुक्त करनेवालों के पते वे छाप रहे हैं, उनका पूरा परिचय भी प्राप्त करके प्रकाशित करते, जिससे उनकी वास्तविकता पाठक स्वयं समझ लेते । ऐसा अवस्थी जी ने नहीं किया—कदाचित् उन्हें पता ही न होगा कि एक **'मन्त्र-ज्ञाता'** या **'सिद्ध-व्यक्ति'** का परिचय किस प्रकार दिया जाता है !

सम्पादक अवस्थी जी को सम्भवतः यही नहीं ज्ञात है कि एक **'मन्त्र'** के मुख्य अङ्ग क्या हैं ! अपने सम्पादकीय अग्र-लेख—**'समय के हस्ताक्षर' : 'मन्त्र-शक्ति असाध्य रोगों से मुक्ति—संयमित जीवन**

के लिए' के ठीक बाद उन्होंने आदि श्री शङ्कराचार्य रचित 'सौन्दर्य-लहरी' से कुछ **'यन्त्र'** एवं **'मन्त्र'** उद्धृत किए हैं। यथा—

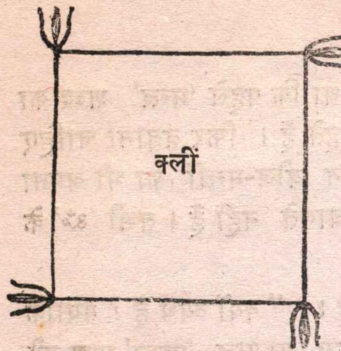

१२ दिनों तक प्रतिदिन एक हजार जाप (?) करें। यन्त्र-स्वर्ण पर बनाएँ।
लाभ : हर कार्य में सिद्धि

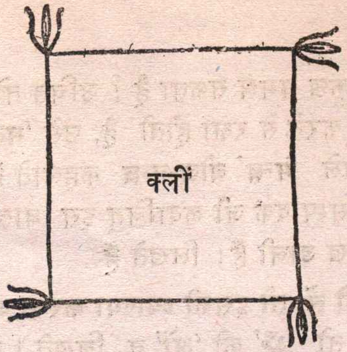

विधि वही
लाभ : शत्रुओं पर विजय

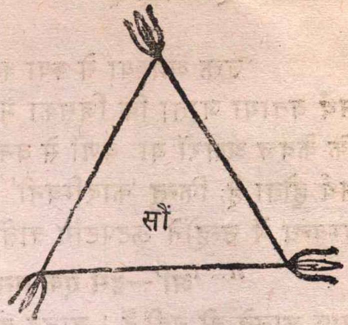

४५ दिनों तक प्रतिदिन एक हजार बार मन्त्र जाप (?) करें। मन्त्र सोने पर बनाएँ।
लाभ : पदोन्नति

अब पाठक कृपया विचार करें। **'क्लीं'** और **'सौः'** कैसे मन्त्र हैं? ये **'बीज-मन्त्र'** हैं। इनका जप करने के लिए किन बातों का विचार करना चाहिए? **'सरस्वती'** के प्रख्यात **'सम्पादक-शिरोमणि'** एवं **'चण्डी'** पत्रिका के प्रवर्त्तक **'कौल-कल्पतरु'** पं० देवीदत्त शुक्ल जी ने ५० वर्षों से भी पूर्व एक पुस्तक लिखकर प्रकाशित कराई थी—**'मन्त्र-सिद्धि का उपाय'**, जिसके छः संस्करण निकल चुके हैं और मूल्य है मात्र पाँच रुपए। इस पुस्तक में **'मन्त्र-विचार'** की विधि बताई गई है, जिससे यह पता लग जाता है कि किसे कौन-सा **'मन्त्र'** जपना चाहिए। ऐसा नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति सभी मन्त्रों के जप से लाभ उठा सकता है। जैसे एक ही औषधि सभी के लिए लाभ-दायक नहीं हो सकती, अपितु हानि-कारक भी हो सकती है, उसी प्रकार **'मन्त्रों'** के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए। फिर प्रत्येक **'मन्त्र'** के जप के पूर्व उसके **'विनियोग, ऋष्यादि-न्यास, षडङ्ग-न्यास, ध्यान** और **'मानस पूजन'** की अनिवार्य आवश्यकता होती है। यही नहीं, **'जप'** के बाद **'जप-संख्या'** का दशांश **'तर्पण, मार्जन'** और **'कन्या-बटुक-भोजन'** भी आवश्यक है। तब अभीष्ट फल मिलता है।

सम्पादक 'कादम्बिनी' ने कोरा **'बीज-मन्त्र'** और **'यन्त्र'** छापकर अपने पाठकों को कितना भ्रमित किया है, यह उक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है। इसी प्रकार 'यन्त्र' लिखने की विधि की भी सम्पादक जी ने स्पष्ट नहीं किया है? **'यन्त्र'** को किस प्रकार की लेखनी से और किस स्याही से लिखना होगा? सामान्यतः **'अनार'** की लेखनी और **'रक्त-चन्दन'** की स्याही का प्रयोग होता है, यह सामान्य साधक भी जानते हैं, किन्तु अवस्थी जी ने उक्त **'यन्त्र'** और **'मन्त्र'** छापते समय किसी साधक से परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं समझी। फलतः उनका यह **'यन्त्र'** और **'मन्त्र'** का प्रकाशन सर्वथा हास्यास्पद बन गया है।

विशेषाङ्क के अन्त में **'श्री दुर्गा सप्तशती महा-यन्त्र'** प्रकाशित है। वह भी सर्वथा भ्रामक बातों से परिपूर्ण है। उसमें छपा **'नवार्ण-मन्त्र'** नितान्त अशुद्ध है। 'ॐ' के लगाने से वह **'दशार्ण'** बन गया

है और **'विच्चै'** नहीं, शुद्ध **'पल्लव'** है—**'विच्चे'** ! **'सप्तशती'** के श्लोकों तक में अशुद्धियाँ हैं !! कहना ही होगा कि इस प्रकार के प्रकाशन से 'कादम्बिनी' के सम्पादक अवस्थी जी और कार्यकारी अध्यक्ष श्री नरेन्द्र मोहन जी की **'व्यावसायिक लोलुपता'** का ही पता चलता है। बस, **'मन्त्र-शक्ति'** एवं **'मन्त्र'** तथा **'यन्त्र'** छापकर रुपए कमाना ही उनका लक्ष्य प्रतीत होता है। पाठकों के ज्ञान-वर्द्धन के प्रति उन्हें कोई ध्यान नहीं। ऐसे ही धन-लोलुप 'अध्यक्षों' एवं 'सम्पादकों' पर इस देश की पवित्र विद्याओं की अधोगति का दायित्व है। वास्तव में यह दुःखद है क्योंकि इस प्रकार के विशेषाङ्क से न सम्पादक/प्रकाशक का कल्याण सम्भव है, न उनके पाठकों का।

अवस्थी जी ने अन्य जो लेख इस विशेषाङ्क में सङ्कलित किए हैं, उनसे भी **'मन्त्र-शक्ति'** के प्रति उनका उपेक्षा-भाव ही व्यक्त होता है। उदाहरण के लिए **'पं० गोपीनाथ कविराज'** जी का लेख **'सिद्ध-भूमि ज्ञान-गंज'** पृष्ठ १३० पर प्रकाशित है। उससे पाठकों को **'मन्त्र-शक्ति'** के सम्बन्ध में भला क्या ज्ञान मिलेगा ? अच्छा होता कि प्रख्यात तन्त्र-मन्त्र-ज्ञाता **'कविराज'** जी का कोई ऐसा लेख दिया जाता, जिससे **'मन्त्र-शक्ति'** के ऊपर प्रकाश पड़ता, किन्तु **'सम्पादक जी'** को अपने सम्पादकीय दायित्व का बोध ही नहीं है। उन्हें तो बस, किसी प्रकार विशेषाङ्क के पृष्ठ भरने हैं !

'विशेषाङ्क' का मुख्य विषय है—**'मन्त्र-शक्ति के चमत्कार'** किन्तु जैसा कि ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है, सम्पादक अवस्थी जी को न तो **'मन्त्र'**-विषयक ज्ञान है, और न उसके प्रति श्रद्धा। तब मुख्य विषय पर गम्भीरता से वे ध्यान दे ही कैसे सकते हैं ! ४४ लेखों में केवल दस शीर्षकों में **'मन्त्र** शब्द के दर्शन होते हैं—

१ सर्व-सिद्धि-दायक **'गणपति-मन्त्र'**, २ सर्व-सिद्धि के लिए **'बगला-मुखी-मन्त्र'**, ३ **'गायत्री-मन्त्र'** के चमत्कार, ४ **'मन्त्र'**-पाठ से मृत्यु वापस लौट गई, ५ वेदना-मुक्ति के लिए **'मन्त्र-योग'**, ६ युद्ध के मोर्चे पर **'मन्त्र-शक्ति के चमत्कार'**, ७ **'बीज-मन्त्रों'** में छिपी शक्ति, ८ **'मन्त्र-साधना'** के केन्द्र, ९ **'मन्त्र'** से प्रेत-मुक्ति, १० तन्त्र-**'मन्त्र'** से लोकोपचार अर्थात् **'मन्त्र'** के लिए विशेषाङ्क का चतुर्थांश ही समर्पित है ! इस 'अंश' में भी केवल तीन देवताओं के मन्त्रों का उल्लेख है—**१ गणपति, २ बगलामुखी** और **३ गायत्री**।आइए, इन तीनों के सम्बन्ध में देखें, **'विशेषाङ्क'** से क्या उपलब्धि होती है—

गणपति मन्त्र : पृष्ठ ६३ पर श्री रघुवीर सिंह राणा (बालू—कैथल, हरियाणा—१२६११७) लिखते हैं—'...**यहाँ मेरे एवं गुरुजी के अनुभूत प्रयोग ही प्रस्तुत हैं**।...' और आपने प्रयोग से सम्बन्धित **'गणपति मन्त्र'** बताया है—'ऊं **गं गणपतये नमः**' किन्तु इसके विनियोगादि नहीं दिए हैं। 'ऊं' भी अशुद्ध है, 'ॐ' होना चाहिए। अङ्ग-हीन होने से इस **'मन्त्र'** के जो भी प्रयोग दिए गए हैं, उनसे अभीष्ट फल किसी भी पाठक को मिलना सम्भव नहीं है। यही बात, लेख के अन्त में राणा जी द्वारा उद्धृत 'क्रोध-शान्ति के लिए' मन्त्र के सम्बन्ध में भी है।

२ बगलामुखी मन्त्र : पृष्ठ ७६ पर पं० ललिताप्रसाद शास्त्री (आचार्य राज-राजेश्वरी पीठ, दतिया—म० प्र०) ने बगलामुखी देवी का परिचय एवं उनका संक्षिप्त पूजा-विधान तो दिया है, किन्तु उनके **'मन्त्र'** का उल्लेख तक नहीं किया है ! उस **'मन्त्र'** की कोई चर्चा दूर रही !!

३ गायत्री मन्त्र : पृष्ठ ८२ पर राधानाथ चतुर्वेदी (८, मैत्री अपार्टमेण्ट्स, ए-३, पश्चिम बिहार, नई दिल्ली—११००६३) ने **'गायत्री-मन्त्र'** और उसका जो मनमाना अर्थ लिखा है, वह अक्षरशः यहाँ उद्धृत है—

'ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनप्रचोदयात्' अर्थात् जो अनन्त जीवों में वास करनेवाले हैं, जिनकी सेवा लक्ष्मी जी निरन्तर करती हैं, जो प्राणी मात्र में जीवन का संचार करते हैं, जो अपने भक्तों का कष्ट दूर करते हैं और जो सब चराचर को गति देते हैं, उन्हीं संसार के उत्पन्न करनेवाले श्रीनारायण देव के उस श्रेष्ठ और आनन्द देनेवाले तेज का हम ध्यान करते हैं अर्थात् अपनी बुद्धि उन नारायण के शरण में देते हैं, जो हमारी बुद्धि को (अच्छे कामों में) प्रेरित करे।

धन्य हैं श्री चतुर्वेदी जी और अभिनन्दनीय है लेख के सम्पादन करनेवाले श्री अवस्थी जी ! **'गायत्री मन्त्र'** का ऐसा अभूतपूर्व अर्थ कदाचित् ही किसी **'मन्त्रज्ञ'** साधक को ज्ञात होगा !!

पृष्ठ १५२ पर **'बीज-मन्त्रों में छिपी शक्ति'** के स्थान पर शीर्षक छपा है—**'तत्काल फल देनेवाले मन्त्र'** ! इसके लेखक महानुभाव हैं कोई—'क्रेजी ब्वाय' (सी. २२/३७ कबीर रोड, वाराणसी-१)। यथा नाम तथा गुण के अनुसार आपने विविध प्रकार के मन्त्रों को मनमाने ढँग से लिखकर उनकी मन-मानी विधि प्रकाशित कराई है। कदाचित् उन्हें पता चल गया होगा कि वे ही 'क्रेजी' नहीं है, 'कादम्बिनी' के सम्पादक और प्रकाशक भी **'मन्त्र-शक्ति के चमत्कार'** के **'क्रेजी'** हैं !

परोपकार की भावना और 'साधन-माला'

बेङ्गलोर (कर्नाटक) की परम विदुषी 'वाणी-मुक्ता' श्री रुक्मिणी गिरिमाजी ने अपने पत्र दिनाङ्क ४ जनवरी, ६३ द्वारा निम्न सूचना देने की कृपा की है :

"....'चण्डी', मई, ८२ अङ्क के पृष्ठ ६२ में 'मनोवाञ्छित वर-प्राप्ति प्रयोग' गौरी देवी का एक सुन्दर स्तोत्र है। मैंने उसकी दसेक झिराक्स प्रतियाँ निकालकर अपने कुछ इष्ट-मित्रों की लड़कियों में बाँटी हैं और उसका स्मरण-पूजन तथा ११ पाठ करने को कहा है, ताकि उन्हें अच्छा 'वर' मिले क्योंकि वे पढ़ी - लिखी हैं, सुन्दर हैं, किन्तु माता - पिता कितना ही प्रयत्न कर रहे हैं, आज तक सफल नहीं हो पाए हैं।...."

निस्सन्देह, श्रद्धेया गिरिमाजी ने स्तुत्य कार्य किया है। प्रायः माता-पिता अपनी सन्तानों के वैवाहिक सम्बन्ध के लिए चिन्तित रहते हैं, किन्तु विवाह - सम्बन्धी 'आध्यात्मिक प्रयोगों' के प्रति ध्यान नहीं देते। जो ध्यान देते भी हैं, वे उससे प्राप्त अनुभवों को प्रकाशित नहीं कराते। अतः इन प्रयोगों की उपयोगिता सब लोग जान नहीं पाते। क्या ही अच्छा हो कि 'वाणी - मुक्ता' सुश्री गिरिमाजी की परोपकार-भावना का अनुकरण अन्य पाठक भी करें। साथ ही, जिन कन्याओं के विवाह 'प्रयोग' के फल-स्वरूप शीघ्र और सुखपूर्वक सम्पन्न हो जायँ, उनकी सूचना भी 'चण्डी' में प्रकाशनार्थ भेजें, जिससे अन्य लोग भी श्रद्धा और विश्वास के साथ इन 'प्रयोगों' को अपना कर लाभान्वित हो सकें।

अलौकिक 'सिद्ध-पीठ'—अद्भुत 'बलि-क्षेत्र' की एक समीक्षा—

'दश महा-विद्या साधना-शिविर' 'रज-रप्पा'

• डा० प्रमोद पालीवाल, रोहतक मेडिकल कालेज, रोहतक (हरियाणा)

काफी समय पूर्व ही ज्ञात था कि **'रज-रप्पा'** जाना है। विहार-राज्य के जन-पद **'हजारीबाग'** में स्थित इस महान् क्षेत्र की महिमा कुछ पूज्य गुरुदेव एवं कुछ आदरणीय बन्धु-प्रवर सर्व-श्री सतीश-कुमार जी उपाध्याय, ऋतशील जी शर्मा से सुन चुका था। अनायास ही बन्धुवर डा० गांधी व श्रीविपिन महाजन जी का भी साथ चलने का कार्यक्रम बन गया। लगभग एक मास पूर्व आरक्षण भी करा लिया गया। हम तीनों को रात्रि ११ बजे नई दिल्ली स्टेशन पर एकत्रित होना था। लेखक को रोहतक (हरियाणा) से, डा० गांधी को झाँसी (उत्तर प्रदेश) से एवं श्री महाजन जी को जालन्धर (पञ्जाब) से पहुँचना था। 'मुरी एक्सप्रेस', जिसमें आरक्षण था, प्रातः ४ बजे चलनी थी। कहते हैं, प्रतीक्षा के क्षण लम्बे होते हैं और जब साक्षात् जगज्जननी माँ से मिलना हो, तो वे कितने लम्बे हो गए होंगे—भुक्तभोगी ही जान सकता है।

२९ अक्टूबर की रात्रि, स्टेशन के प्लेटफार्म संख्या ४ पर **'निशा-भेदन'** में बीती! ३० की प्रातः-बेला में धुँधलके को चीरती 'मुरी एक्सप्रेस' गन्तव्य को चल दी। शयन-यान में आरक्षण था ही। हममें से कोई सोया, कोई जागा, किसी ने उपन्यास पढ़कर समय व्यतीत किया। अन्ततोगत्वा ४/४।। बजे सायं-काल गाड़ी प्रयागराज पहुँच गई। इसी की तो प्रतीक्षा थी। अब समय 'काटने' की घड़ियाँ बीत चुकी थीं, समय का सदुपयोग करना था। शिव-स्वरूप गुरुदेव सहित परम आदरणीय सर्व-श्री ठाकुर साहब, पं० विश्वनाथ जी पाण्डेय, तिवारी जी, ऋतशील जी, उपाध्याय जी—छः लोग प्रयाग से साथ ही के डब्बे में चढ़े, सामान रखा गया, परन्तु **'भूखे भजन न होय गोपाला'** के अनुसार सत्सङ्ग तो चला, परन्तु प्रयाग-वासी बन्धुओं के सामान से उठती सुस्वादु भोजन की तरङ्ग बार-बार मन को विचलित कर रही थी।

रात्रि के ८ बजे भोजन में सु-स्वादु लिट्टियाँ (जो इस लेखक को १० वर्ष बाद खाने को मिली थीं) उनमें भरा गया सत्तू, महकते बासमती चावल, देशी घी में तली गयी पूड़ियाँ, सब्जियाँ व अचार और साथ में आगरे का पेठा—लगभग २४ घण्टे बाद खाने को मिला, तो तन-मन अद्भुत आनन्द से भर गए।

अग्रज व अन्य बन्धु जब विश्राम करने लगे, तो इन पंक्तियों के लेखक को बन्धुवर उपाध्याय जी से 'सत्तू या सतुआ' की महिमा, पुराण अथवा चाहें तो माहात्म्य भी कह सकते हैं, उन्हीं के श्रीमुख से सुनने को मिला। इस हास्य-व्यंग्य की रचना में जो रस था, वह इस लेखक ने शायद ही कहीं पाया हो! वैसे बहुत-सी हास्य-व्यंग्य की रचनाएँ पढ़ी व सुनी हैं, किन्तु दावे के साथ कहा जा सकता है कि इस प्रकार की रचना स्वयम्भू पद्म-श्री से अलंकृत लेखकों की भी कम-से-कम मैंने तो नहीं पढ़ी। दुर्भाग्य-वश यह रचना अप्रकाशित है, गुमनामी के अँधेरे में खोई—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार हिन्दी के असंख्य लेखक, जिनकी रचनाओं में माटी की सुगन्ध है, ग्राम्य-जीवन से लेकर, शहरी मध्यम-वर्ग का सार्थक चित्रण उभर कर आया है। उन्हें न आज के प्रकाशक चाहते हैं, न ही सम्पादक। उन्हें चाहिए

बस—'मौत का सन्नाटा', 'खौफनाक मौत'। यही तो है, राष्ट्र-भाषा, राज्य-भाषा, सम्पर्क-भाषा (समय-समय पर बदलते नाम) हिन्दी की नियति, उसका भविष्य ! सोचते-सोचते नींद आ गई,………विषयान्तरण के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ। बात भगवती छिन्नमस्ता, अधिष्ठात्री 'रज-रप्पा' की करने चला था .. बात 'राष्ट्र-भाषा' की उठ गई ! वैसे अनुचित यह भी नहीं है। प्रत्येक शाक्त पहले मातृ-भूमि, मातृ-भाषा का उपासक होता है—भोग-मोक्ष की बात उसके बाद सोचता है।

रामगढ़ कैण्ट स्टेशन आया प्रातःकाल। मानव मात्र को ही कमियों की कला-कृति भगवती ने बनाया है। लेखक भी अपवाद कैसे हो सकता है ! विस्तार में जाए बिना बता दूँ कि **'धूमा'** का कोटा समाप्त हो रहा था। और यह अकिञ्चन सब कुछ छोड़ उसी की खोज में था। मां का प्रसाद मिला। इस आयोजन के कर्ता-धर्ता श्री शरण जी का प्रबन्ध उत्तम ही नहीं, अति प्रशंसनीय था। स्टेशन पर एक मारुति वैन व एक ट्रैकर प्रतीक्षा-रत थे। 'रज-रप्पा' की पुण्य भूमि के लिए प्रस्थान आरम्भ हुआ। रास्ते में मारुति वैन में पंचर हो गया, पहिया बदला गया। सब लोग नीचे आए। इसी बीच गुरुदेव कहने लगे—**'शुभ-कार्यों में विघ्न आते ही हैं। साधक को सब कुछ सम-भाव से लेना चाहिए—दुःख-सुख सभी।'** शायद पंचर ही इसीलिए हुआ था कि हम गुरु-मुख से निकली वाणी को सुनें व मनन करें। मनन ही पर्याप्त नहीं, उसे जीवन में उतारें भी।

'रज-रप्पा' की सिद्ध-भूमि में पहुँचे, मानसिक नमस्कार किया। यही तो है वह क्षेत्र, जहाँ साधकों ने अपनी सतत कठोर साधना से बीहड़ जङ्गल को **'सिद्ध-क्षेत्र'** में परिवर्तित कर दिया। यहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य को माँ ने दोनों हाथों से लुटाया है। साथ ही चण्डी में वर्णित **'यं यं चिन्तयते कामं, तं तं प्राप्नोति निश्चितम्'** को भी साधकों ने अपनी साधना से इस क्षेत्र का काया-कल्प करके सिद्ध कर दिया। यह विषय बुद्धि-गम्य कम, अनुभूति-गम्य अधिक है। आप स्वयं जाइए, अनुभूतियों को सँजोइए, गुरु-मुख से मार्ग-दर्शन ले भोग-मोक्ष को, जो इस धरा पर मात्र **'तन्त्र'** दे सकता है—ग्रहण कीजिए, परन्तु पहले याचक बनें। शिशु बनकर शिशु-वत् हृदय से माँ के पास पहुँचिए तो सही ! फिर देखिए, भगवती किस तरह अपने स्नेह से आपको आप्लावित कर देती हैं; किस तरह अबोध शिशु की भाँति दुग्ध-पान कराती हैं।

'रज-रप्पा' पहुँचने के पश्चात् राष्ट्रीय पेय 'चाय' की बहुत इच्छा थी, कुछ थकावट भी और जिसकी जितनी इच्छा थी, पान किया। हम लोगों को, जो पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पञ्जाब से आए थे, चाय का पात्र बहुत छोटा लगा। लोटे से पीने की आदत जो ठहरी ! परन्तु भगवती के यहाँ क्या कमी—जिसने जितने पात्र चाहे, ग्रहण किए और तृप्त हुए। दैनिक क्रियाओं से निवृत्त हुए। अब चले **'भैरवी'** की शरण में। उनके जल में इस तरह पड़ गए, जैसे बहुत देर से बिछुड़ा शिशु माँ के सीने से चिपट जाय। शीतल-मीठा जल—दुग्ध-धवल ! माँ ने भी देने में कोई कमी नहीं की, सब थकावट उस भाँति दूर हो गई, मानो साक्षात् माँ का दुग्ध पिया हो।

श्रद्धेय विपिनविहारी शरण जी के मार्ग-दर्शन में हम सबने दसो महा-विद्याओं के मन्दिरों के अतिरिक्त **महा-वीर हनुमान जी, राधा - कृष्ण, भगवान् गणेश, महा-काल भैरव**, विश्व-स्वरूपा **भगवती दुर्गा, विश्व-रूप भगवान् विष्णु** के मन्दिर तथा सम्भवतः भारत के एक-मात्र **सूर्य-मन्दिर** के दर्शन किए। सूर्य-मन्दिर में भगवान् भास्कर, सात अश्वों द्वारा खीचे जानेवाले रथ पर विराजमान हैं। इस **सूर्य-मन्दिर** की विशेषता यह है कि जब सूर्यदेव दक्षिणायन व उत्तरायण होते हैं, तो प्रकाश की प्रथम रश्मि उन्हीं

को प्रणाम करती है। इस अनूठे दिव्य परिसर का प्राकृतिक सौष्ठव जहाँ पराकाष्ठा पर है, वहीं स्थापत्य-कला का वैज्ञानिक स्वरूप भी।

स्नान के बाद, भगवती छिन्नमस्ता के मन्दिर में नदी से लाया गया पत्थर मनौती के रूप में रखा जाता है, परन्तु मण्डल के लोगों की वही स्थिति हो रही थी, जो शायद स्वामी विवेकानन्द (उस समय के नरेन्द्र) की हुई थी, जब रामकृष्ण परमहंस ने उनसे जो इच्छा हो, भगवती काली से माँगने को कहा था। स्वामी जी के नेत्र अश्रु-पूरित हो गए, माँग न सके! वही दशा हम लोगों की रही।

भोजन व विश्राम, रात्रि में अर्चन, साधकों का समूह! **'पूज्य मेधानन्द जी'**—गेरुआ वस्त्र, मुख-मण्डल से प्रस्फुटित होते प्रकाश की अद्भुत आभा, गले में रुद्राक्ष व स्फटिक की माला—अद्भुत छवि थी। प्रकाण्ड पण्डित—अहिन्दी-भाषी होते हुए भी हिन्दी में धारा-प्रवाह प्रवचन। चक्रेश्वर—परम पूज्य गुरुदेव **पण्डित रमादत्त जी शुक्ल** 'कुल-भूषण', जिनकी वंश-परम्परा में २८ पीढ़ियों से भगवती की भक्ति समाई है, सम्पादक-'सम्पादक की वाणी', मानद सम्पादक-'चण्डी', भूतपूर्व सम्पादक 'सरस्वती', लुप्त-प्राय तान्त्रिक ग्रन्थों को प्रकाश को लानेवाले। बचपन से भगवती के उपासक, स्पष्ट-वक्ता, परम दयाशील, दिव्य-भाव में स्थित—सोने में सुहागा यह कि उनकी भाषा बहुत सरल, सुबोध एवं गूढ़-से-गूढ़ विषय का इस प्रकार प्रस्तुतीकरण कि साधारण पढ़-लिखा व्यक्ति भी उसे हृदयङ्गम कर ले। मनन किया जाय, तो एक-एक शब्द में जीवन में आमूल परिवर्तन कर देने की सामर्थ्य! अर्चन के पश्चात् जिज्ञासुओं की भीड़—किसी प्रकार रात्रि-विश्राम।

'त्रि-दिवसीय सम्मेलन' के लक्ष्य रखे गए थे—(१) स्थान-स्थान में फैले शाक्त-बन्धुओं का सङ्गठन। कहा भी है—**'सङ्घे शक्तिः कलि-युगे'।**

(२) **तान्त्रिक साधना** भोग-मोक्ष-प्रदात्री है, समाज में व्याप्त समस्त प्रकार के भेद-भाव—चाहे वे जाति के रूप में हों अथवा आर्थिक—सबको दूर कर विश्व-बन्धुत्व की भावना की शिक्षा देती है, किन्तु आज वह समाज में मात्र जादू-टोने, मारण-मोहन, उच्चाटन आदि का पर्याय बन कर रह गई है। इस भ्रम को दूर कर यह प्रतिपादित करना कि **'तन्त्र'** मात्र वह नहीं है, जो समझा जाता है। यह चमत्कारों व सिद्धियों के प्रदर्शन से दूर एक वैज्ञानिक साधना-पथ है। आवश्यकता है वैज्ञानिक आधार पर इसके विश्लेषण व शोध की, जिसका प्रचार-प्रसार समाज के हित में वाञ्छनीय ही नहीं, समय की अनिवार्य आवश्यकता है।

(३) तन्त्र-सम्बन्धी साङ्केतिक साहित्य में कर्म, भक्ति एवं ज्ञान के सभी तत्त्वों को सम्मिलित कर यह प्रतिपादित किया है कि गृहस्थ में रहते हुए अपने परिवार, ग्राम से लेकर पूरे देश व विश्व की सेवा सहज ही की जा सकती है। भोग-मोक्ष—दोनों की प्राप्ति सम्भव है। घर के एक कोने में बैठकर भी वह प्राप्त हो सकता है, जो हिमालय की कन्दराओं में भी कदाचित् ही सरलता से प्राप्त हो सके! इस सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी का प्रायोगिक रूप से प्रस्तुतीकरण अर्थात् प्रवृत्ति में निवृत्ति की प्राप्ति का मार्ग बताना।

(४) 'गोपनीयं...गोपनीयं' के सिद्धान्त ने जहाँ शाक्त-धर्म को जीवित रखा, वहाँ उसे हानि भी बहुत पहुँचाई। 'पञ्च-मकार' के मूल-तत्त्व को ग्रहण न कर, 'भैरवी-चक्र' के दर्शन को बिना समझे—उन्हें मात्र भोग-विलास की वस्तु मान लिया गया। इस सम्बन्ध में तन्त्र-सम्बन्धी सत्य बातों, वैज्ञानिक

सिद्धान्तों की सार्वजनिक रूप से घोषणा कर, मिथ्या प्रचार को धराशायी कर, शाक्त-धर्म को **'सर्व-जन-हिताय सर्व-जन-सुखाय'** के रूप में स्थापित करना।

(५) प्रायः कहा जाता है—गुरु को उपयुक्त पात्रता-प्राप्त शिष्य नहीं मिलता। इसका बहुत सटीक उत्तर तन्त्र-सम्राट्, निःस्पृह साधक, **'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल** ने बहुत पहले दे दिया। जब एक कुम्भकार निर्जीव मिट्टी से सुन्दर पात्र बना सकता है, तो क्या कारण है कि एक सद्-गुरु स्पन्दन-शील मनुष्य से, जिसमें आत्मा-रूपी परमात्मा विराजमान है, एक सत्-पात्र का निर्माण नहीं कर सकता। इस समस्या का समाधान करना भी उक्त **'साधना-शिविर'** का एक लक्ष्य था।

सम्मेलन का शुभारम्भ हुआ। श्रद्धेय मेधानन्द जी से लेकर पूज्य गुरुदेव पं० रमादत्त जी शुक्ल ने शाक्त-धर्म के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला। इस सम्मेलन में मात्र दार्शनिक प्रवचन ही नहीं हुए, अपितु शाक्त-साधना के व्यावहारिक पक्षों पर भी प्रकाश डाला गया। प्रायः होता यह है कि बातें तो बहुत बड़ी-बड़ी की जाती हैं, परन्तु व्यवहार में आनेवाली छोटी-छोटी बातों से हम अनभिज्ञ रह जाते हैं। **'रज-रप्पा'** में प्रस्तुत **'प्रपत्र'** इस बात के साक्षी हैं कि इस **'साधना-शिविर'** में वैज्ञानिक ढंग से साधना-सम्बन्धी छोटी-छोटी बातों से लेकर कुण्डलिनी—जैसे गूढ़ विषय पर भी प्रकाश डाला गया। साथ ही समय का पूरा ध्यान रखा गया। कोई भी **'प्रपत्र'** ५ मिनट से कम व १० मिनट से अधिक समय का नहीं रखा गया, अन्यथा प्रिय विषय पाकर वक्ता बोलता रहता है और आवश्यक मीमांसा छूट जाती है।

वास्तव में साधना के लिए चमत्कारी गुरु की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी विषय का जानकार साधक खोजकर, उन्हीं को गुरु मानकर साधना-पथ पर अग्रसर हुआ जा सकता है। वास्तव में मानव शरीर-धारी गुरु नहीं होता—गुरु तो साक्षात् शिव ही हैं। मानव-शरीर-धारी को तो हमारी श्रद्धा, हमारी निष्ठा, हमारा विश्वास गुरु बनाता है।

'साधना - शिविर' की इस प्रकार की कुछ अनूठी बातें स्मृति - पटल पर गूँज रही हैं। पूज्य श्री मेधानन्द जी के प्रवचन और ठीक प्रातः ८ बजे प्रारम्भ होकर ढाई बजे तक चलनेवाली उनकी भाव-मयी **'श्रीयन्त्र-पूजा'** अभूतपूर्व रही। लेखक इस पूजा की मात्र झलकें ही देख पाया। समय की प्रतिबद्धता हम लोग भूल ही गए हैं, अन्यथा शहरी परिवेश में रहनेवाला यह लेखक भी स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर उस पूजा में सम्मिलित हो सकता था। फिर भी समय का सदुपयोग ही हुआ। उक्त दीर्घ पूजा की अवधि में परम पूज्य गुरुदेव के नेतृत्व में कुछ साधक दशो महा-विद्याओं के दर्शन करते रहे। हिन्दी और संस्कृत में ध्यान पढ़े जाते रहे। भगवती काली से प्रारम्भ होकर यह क्रम **'रज-रप्पा'** की अधिष्ठात्री छिन्नमस्ता तक चला। श्री विश्व मूल-प्रकृति - स्वरूपा भगवती दुर्गा एवं श्री विश्व-रूप भगवान् श्रीकृष्ण मूल पुरुष के मन्दिर के प्राङ्गण में बैठकर भगवती काली की स्तुति की गई। स्तुति सरल सस्कृत में थी, परन्तु उसमें सङ्गीत का जो अद्भुत आनन्द था—शब्दों में उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। पाठ - पूजन का यह क्रम **'कौल - कल्पतरु' पं० देवीदत्त जी शुक्ल रचित** 'देवी-दशक' तक चला। बीच में बटुक-भैरव के अष्टोत्तर-शत-नाम का भाव-मय पाठ व भगवती धूमावती का ध्यान किया गया—जिनका रूप देखने में भयङ्कर लगता है, किन्तु जब श्री गुरुदेव महाराज ने उनकी उपमा उस स्नेह से दी, जो भाग्य-शालियों को अपनी वृद्धा नानी या दादी से मिलता है, तो भाव ही बदल

गया। लगा, साक्षात् दादी या नानी ही हम पर स्नेह-वर्षा कर रही हैं। मन से भय हट गया, भगवती की मूर्ति दया - मयी करुणा - मयी होकर वात्सल्य बिखेरनी लगी। प्रश्न भी श्री गुरु जी महाराज का था, उत्तर भी।

"पहले भगवती काली का ध्यान और अन्त में इस सिद्ध-क्षेत्र की अधिष्ठात्री छिन्नमस्ता का ! क्यों ? उत्तर हो सकता था—**'सब कुछ एक ही तो है'**, किन्तु गहराई से देखा जाय, तो जहाँ आदि है, वहीं अन्त और जहाँ अन्त है, वहीं से आदि।" भाव में कितना गहन दर्शन है, परन्तु अभिव्यक्ति में दार्शनिकता का दम्भ नहीं। दूसरे शब्दों में कहा जाय, तो जन्म के गर्भ में मृत्यु छिपी है और मृत्यु से जन्म का आरम्भ होता है। यह तो एक वर्तुल चक्र या वृत्त है।

इस सब में लगभग पौन घण्टा लगा, किन्तु आत्मा की ऐसी तृप्ति हुई कि लेखनी उसे सँजो नहीं पा रही। आनन्द के कारण रोमाञ्च हो आया। यह प्रसङ्ग अधूरा ही रह जाएगा, यदि साथ में चल रहे—आदरणीय कौल-दम्पत्ति की चर्चा न की जाय। **'श्री-कौल'**— मुख-मण्डल से टपकती तेजस्विता, रक्त-वर्ण वस्त्रों से सुशोभित शरीर, गले में रुद्राक्ष व बड़े-बड़े नयनाभिराम स्फटिक की माला, भाल पर त्रिपुण्ड, उसके नीचे रक्त-चन्दन, बड़ी-बड़ी स्नेह-मयी आँखों पर लगा चश्मा, सिर पर रक्त-वर्ण का ही टोपा और साथ में सरल सहज उनकी शक्ति—मानों साक्षात् जगदम्बा !……कौन भूल पाएगा उस देव-दुर्लभ दृश्य को, जब—गुरु महाराज ने उनके चरण स्पर्श कर आशीर्वाद माँगा और गले लगकर फफक-फफकर अश्रु-प्रवाह करने लगे ! बड़ा करुण दृश्य था। यही है वह प्रत्यक्ष प्रमाण, जिसे पढ़ते तो सब हैं, पर बस, पढ़ने के लिए। प्रत्येक नारी में जगदम्बा का दर्शन—**'विद्या समस्तास्तव देवि ! भेदाः, स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।'** यह कहा तो गया है, किन्तु प्रायोगिक एवं व्यावहारिक रूप से प्रत्यक्ष स्वयं प्रथम बार देखा !

लम्बा कद, इकहरा शरीर, गौर-वर्ण, नुकीली नाक, भव्य ललाट, बड़ी-बड़ी थोड़ी रक्तिम आँखें—कण्ठ में बिराजती साक्षात् सरस्वती—इन दिव्य विभूति का नाम था **'पं० विश्वनाथ पाण्डेय'**। उनके स्वर से गूँजता **'जय छिन्न-शिरा—भव-भाव धरा'** व **'जय जगदम्ब, जय जगदम्ब'** पूरे सम्मेलन में प्रतिध्वनित होता रहा। सम्मेलन में ही क्यों, जिसे देखो—वही गुनगुना रहा था।

कन्धे पर कम्बलासन, घुटनों तक धोती, गले में सफेद डोरे से लटका भगवान् राम का चित्र, गले में ही विराजमान सर्प-मेरु की अस्थि-माला, लम्बा कद, बड़ी दाढ़ी, पतली-दुबली काया, ध्यानावस्था में श्याम कम्बलासन पर एकदम सीधा मेरु-दण्ड व **'माँऽऽऽ'** की कातर पुकार ! कैसे मिट सकेगा—इन भोले अवधूत का चित्र स्मृति-पटल से।

सम्मेलन के तीनों दिन श्री गुरुदेव को घेरे जिज्ञासु। प्रत्येक की समस्याएँ—प्रातः से रात्रि तक ! स्वर में झल्लाहट नहीं, झुँझलाहट नहीं—हालाँकि आयु के अनुसार चेहरे पर थकावट के चिह्न स्पष्ट थे। उनका एक नया रूप देखा—एक सज्जन की हस्त - रेखाओं का अध्ययन करते। समस्याएँ चाहे सांसारिक हों अथवा आध्यात्मिक, पारिवारिक हों अथवा दुनियादारों से सम्बन्धी—सभी का समाधान तो वे कर रहे थे ! यहाँ यह प्रसङ्ग भी सङ्केत मात्र में ही देना पर्याप्त होगा कि उन्होंने एक **'घुग्घू'** (पञ्जाबी में शङ्ख) को कैसे **'मोती'** बना दिया—यह विषय ही अलग है।

'दामोदर नद' कुछ श्यामला लिए व श्वेत-वर्णा **'भैरवी नदी'** पर बहुत चर्चाएँ चलीं—दार्शनिक भी, स्थूल भी, **'विपरीत रति'** शब्द को अन्यथा लेने सम्बन्धी भी, परन्तु घर पर **'शक्ति'** ने **'विपरीत-**

रति' का जो अर्थ बताया—शब्द तो ये नहीं, भावार्थ था कि **'जब नद-रूपी 'पुरुष' पूर्ण श्रद्धा से समर्पण-भाव से भगवती के प्रति समर्पित हो जाता है; तो भगवती भैरवी-रूपी नारी अपनी सम्पूर्ण कलाओं के साथ—शक्तियों के साथ उस पर आच्छादित हो, समर्पित हो, उसका उद्धार करती है।**

'पञ्च-वटी, पञ्च-मुण्डी आश्रम' में एक गौर-वर्णा देवी भगवती काली की उपासना में लीन थीं। एक बच्चा बहुत सङ्गीतमय ढँग से घण्टा बजा रहा था! माई के बाएँ हाथ में मधुर ताल में बजती घण्टी व ताल और लय के साथ-साथ दाहिने हाथ से घूमता दीपक! कुछ उत्सुकता, कुछ मधुर सङ्गीत की गूँजती स्वर-लहरी! धृष्टता कर हम सब प्राङ्गण में आ गए—पञ्च-वटी व कुटिया के बीच खुला आँगन। श्वेत परिधान में गौर-वर्ण व रक्ताभ मुख-मण्डल वाली ये थीं–दादा भाई की शक्ति! तेज इतना प्रखर कि यदि गुरुदेव साथ न होते, तो चार-दिवारी के अन्दर घुसने का साहस नहीं था।

यहाँ दक्षिण-भारतीय नैयर-दम्पत्ति को, जो कितने गहरे साधक हैं—कहना कठिन है व मिश्र जी को, जो बहुत तल्लीनता से कार्य में जुटे थे, आभार प्रदर्शित न किया जाय, तो धृष्टता होगी। इस सम्मेलन की विशेषता थी—**'अनेकता में एकता'**! कोई नहीं जानता, कौन कितने पानी में है, कौन क्या है। यहाँ डा० मारुतिनन्दन पाठक जैसे ओजस्वी वक्ता भी थे, तो सहज-सरल भक्त भी। पाण्डेय जी जैसे कण्ठ के सम्राट् भी थे, तो मिथिला-निवासी भजन गानेवाले सौम्य पण्डित जी भी……विद्वान् थे—वक्ता-प्रवक्ता, अधिवक्ता, चिकित्सक, अभियन्ता, अध्यापक, प्राध्यापकों जैसा बुद्धि-जीवी वर्ग था, तो सहज सरल भक्त-गण भी!

पटना से पधारे **'बिहार शाक्त सम्मेलन'** के कर्णधार **'कुल-रत्न' श्री वीरेन्द्र गिरि** व **'कुल-रत्न' श्री विजय वत्स** का यहाँ विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूँगा, जिनकी वाणी में गम्भीरता, रोचकता एवं कण्ठ में माधुर्य था—ऐसा माधुर्य कि बस सुनते रहें, ये क्षण लम्बे और लम्बे होते जाएँ—इस आशा के साथ।

श्रोताओं को प्रश्न करने का जिज्ञासा-समाधान करने का आवाहन जब संयोजक श्री ऋतशील शर्मा ने किया, तो अनेक लोग आए। प्रश्नों की भाषा भिन्न हो सकती है, परन्तु सार-तत्त्व था भगवती को जानना—जिज्ञासा और जिज्ञासा—उनका चरण-प्रसाद पाने की अभिलाषा……। वे भाव-विह्वल थे, भावावेश में थे, साथ ही उत्तेजित भी……मानो सब समेट कर मोती भर लें! भावावेश का शब्द आता है, तो एक श्रद्धेय श्रोता की छवि सहज ही आँखों में घूम जाती है। उनका प्रश्न प्रश्न ही नहीं था, एक सात्विक आक्रोश था या भाव-विह्वलता—जो सब बाँधों को तोड़कर बाहर आ गई। मैं उनके आक्रोश को नमन करता हूँ। यह भी भगवती का ही तो रूप था। वे कह रहे थे—**'यहाँ किसी के चेहरे पर तेज नहीं, जो नसों को झंकृत कर दे। कहाँ है वह वाणी? सोचा था यहाँ आकर प्यास बुझेगी, किन्तु ऐसा नहीं हुआ।……'**

वातावरण में रजोगुण का समावेश हुआ। मधुरं - मधुरं में एक हरी मिर्च का हिस्सा-सा आया। यही तो आनन्द था……लेकिन कैसे कहा जाय उन बन्धु को कि यहाँ सब लोग भूख मिटाने नहीं, भूख बढ़ाने को एकत्रित हुए हैं, भूख……माँ को प्राप्त करने की भूख। जब भूख ही नहीं होगी, तो उसके मिटाने का प्रयास ही नहीं होगा। वहाँ एकत्रित समुदाय **'तेज'** वितरित करने नहीं–स्वयं **'तेज'** की खोज में आया था। 'तेज' तो तपस्या से मिलता है। यही तो एकत्रित साधक-समुदाय का लक्ष्य

था। पटना से पधारे **'श्री कुमार उमेशचन्द्र'** ने बहुत मधुर कण्ठ से काव्य में **'वामा-क्षेपा'** की तप:-स्थली, सिद्ध-क्षेत्र वङ्ग-प्रान्त-स्थित **'तारा-पीठ'** में हुई अनुभूतियों द्वारा पुनः 'सत्व'-तत्त्व की वर्षा कर दी।

सम्मेलन का अन्तिम दिवस। **पूज्य गिरिजी और शङ्कर बाबा** मञ्च पर दाएँ-बाँएँ और बीच में स्वनाम-धन्य **श्री मेधानन्द जी**, पूज्य **गुरुदेव** व पूरे संयोजन का भार कन्धे पर उठानेवाले महावीर-स्वरूप **श्री विपिनबिहारी शरण** एक कोने में—कोई अहं नहीं। कार्यवाही का सञ्चालन कर रहे थे **'कुल-रत्न' श्री वीरेन्द्र गिरि जी**। बहुत बड़ा भार उस दिन उनके कन्धों पर था। **'भरत-मिलाप'** जैसा दृश्य। इस आयोजन के कर्ता-धर्ता सभी की सुविधा देखने में स-परिवार व्यस्त **'श्री शरण जी'** की वाणी में कम्पन हुआ। देखते-ही-देखते उनकी आँखों से अश्रु-प्रवाह होने लगा, मानो गङ्गा-यमुना ही अपने इस भक्त की भाव-विह्वलता पर बाँध तोड़कर प्रेमाश्रु बन बह चली थीं ‥ ये प्रेमाश्रु बन्द ही नहीं हो रहे थे। वे बार-बार चश्मा साफ कर बोलने का प्रयत्न करते, किन्तु वाणी साथ छोड़ देती। बस, आँखों की भाषा ही बोल रही थी। किसी कवि ने क्या ही सच कहा है—**'प्रथम तो सकुचे मगर फिर सहज सजीले नयन बोले—हम धधकती आग को पानी बनाना जानते हैं'**…… पूज्य गुरुदेव तो स्वभाव से ही भावुक हैं—वहाँ से भी गङ्गा-यमुना का प्रवाह आरम्भ हो गया। गला भर-भर आ रहा था और श्रोता-गण……सभी की आँखें गीली थीं। प्रेम-भक्ति-रस का साक्षात् अवतरण……निरन्तर रोदन में समय व्यतीत करने-वाले, शव - परीक्षण—जैसे कठोर कार्य करनेवाले, उसी के अभ्यस्त चिकित्सक भी, अद्वैत वेदान्त की सार्थक हृदय-स्पर्शी मीमांसा कर रहे मनीषी भी इसी प्रवाह में बह चले…!

जब गोस्वामी तुलसीदास **'भरत-मिलाप'** का वर्णन कर रहे होंगे, शायद कोई ऐसा ही भावुक प्रसङ्ग उनकी आँखों में तैर रहा होगा। यहाँ तो सभी 'भरत' थे—सभी भाव-विह्वल, प्रेमाश्रु झर रहे थे। शायद **'दामोदर नद'** व **'भैरवी नदी'** भी, जङ्गल में घूमती शिवाएँ व अन्य वन-प्राणी भी भाव-विह्वल हो रहे थे। यहाँ एक तत्त्व की प्रधानता थी—प्रेमाश्रु और प्रेमाश्रु। इस सात्त्विक वातावरण में चल रही वायु व भैरवी की जल - धारा—सभी मानो समवेत स्वर से गा रहे थे—**'जय छिन्न-शिरा, भव-भाव-धरा।'** आकाश में पूज्य दादा, गुरु-भाई श्री सुकुमार बसु, स्वामी जी, माई जी, बाबाश्री, बप्पा श्री सहित समस्त गुरु-मण्डल अभय व आशीर्वाद की मुद्रा में इस दृश्य को प्रसन्न-चित्त हो देख रहे थे। उनका रोपा गया पौधा वृक्ष तो नहीं बना, परन्तु इतना बड़ा अवश्य हो गया है कि आँधी-पानी से रक्षा कर सके, उसमें सुकोमल नई-नई पत्तियाँ पल्लवित हो रही हैं। लगा, काल-चक्र की गति रुक गई है। वह भी अपनी अविराम गति को विराम कर इस दृश्य को देखने रुक गया है।

लेखनी का कार्य लेखन है, परन्तु व्यक्ति की मर्यादा है और पृष्ठों की सीमाएँ **'रज - रप्पा'** का **'दश महा-विद्या शिविर'** तो अपने अन्तिम चरण में पहुँच गया, परन्तु जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है, **'अन्त'** के गर्भ में **'प्रारम्भ'** समाया है……… हम सभी शाक्त-बन्धुओं का यह परम कर्त्तव्य ही नहीं, पुनीत धर्म है कि इस प्रकार के आयोजन समय-समय पर होते रहें। शाक्त-बन्धु जहाँ भी हों, 'अहं' को भुला एक **'केन्द्र-विन्दु'** बन जाँए, जहाँ से शक्ति का प्रवाह होता रहे। इसके लिए सङ्गठित एवं समर्पित रूप से प्रयास करें। व्यावहारिक मार्ग-निर्देशन एवं दिशा-बोध हमें इस प्रथम अभूतपूर्व **'दश महा-विद्या साधना-शिविर'** से मिल ही गया है।

कल्याणकारी **'शाक्त-साधना'** के प्रचार-प्रसार का कार्य महान् है। कार्य जितना विराट् होगा—प्रयत्न उतने ही अधिक व श्रम-साध्य होंगे, बहुत कठिन भी। जगदम्बा की कृपा एवं मनीषी साधकों

तथा भक्तों के समवेत सहयोग से यह अभूतपूर्व अभियान भी सहज हो जाएगा—तब, जब भागीरथी को धरा पर लाने के लिए हममें से प्रत्येक भगीरथ बने, भागीरथ यत्न करे। यह सब हमें करना ही होगा—इस महान् देश के कल्याण के लिए, विकास के लिए, उत्थान के लिए !

क्या हम शाक्त—जगदम्बा के पुत्र अपना कुछ समय और कुछ द्रव्य यथा-शक्ति इस प्रयास में नहीं लगा सकते ? क्या **'सर्व-मङ्गल-माङ्गल्ये, शिवे सर्वार्थ-साधिके'** का जय-घोष करनेवाले इतने स्वार्थी हो गए ?? कदापि नहीं, हमारी तो कामना ही रही है—**'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः**...।' **'चण्डी'** पत्रिका इस महत् कार्य के लिए पिछले लगभग इक्यावन वर्षों से आँधी-तूफानों में भी ज्योति-स्तम्भ की भाँति खड़ी है ...सङ्घर्ष-रत है। गुरुओं का आशीर्वाद एवं माँ का वरद हस्त हमारे साथ है .....बस, थोड़े सामूहिक प्रयत्न की आवश्यकता है... शाक्त बन्धुओं ! स्मरण कीजिए ऋषियों की अमर वाणी—**'उत्तिष्ठत्, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत'** (उठो, जागो और तब तक मत रुको, जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाय।)

मानव मात्र—सभी **'शाक्त'** हैं—**'शक्ति'** के विना तो सामने रखा भोजन का ग्रास तक मुँख तक नहीं पहुँच सकता। वैष्णव भी, शैव भी, जैन और बौद्ध भी। और-तो-और, **'राष्ट्र-गुरु' स्वामी-वर्य** के अनुसार इस्लाम एवं ईसाई धर्म के अनुयायी भी, जिन्होंने तन्त्र, मन्त्र, बलि (कुर्बानी) तथा जागृति, सङ्गठन, सेवा की भावना को अपना रखा है। यह सब वास्तव में हमारा ही है—पर हम इन्हें विस्मृत कर बैठे हैं।

लिखने को बहुत है—स्वानुभूतियाँ, मर्म-स्पर्शी संस्मरण, परन्तु अब लेखनी को विश्राम देने से पूर्व भगवती के चेतन व बुद्धि-रूपी स्वरूप की वन्दना कर लें। हमारी सुप्त चेतना को जाग्रत कर बुद्धि को समस्त प्राणियों के कल्याणार्थ प्रेरित करें—

या देवी सर्व-भूतेषु, चेतनेत्यभिधीयते। नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।

या देवी सर्व-भूतेषु, बुद्धि-रूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ।।

कानों में गूँज रहा है.....निरन्तर गूँजे जा रहा है—**'जय छिन्न-शिरा, भव-भाव धरा !'**

'चण्डी' की आजीवन सदस्यता

'चण्डी' मासिक पत्रिका का प्रकाशन पिछले ५० वर्षों से प्रति-मास अधिक-से-अधिक उपयोगी रूप में हो रहा है। **'प्रकाशन - कार्य' की सुविधा** की दृष्टि से **'चण्डी'** मासिक पत्रिका की **'आजीवन-सदस्यता'** की योजना बनाई गई है। सम्पन्न पाठक बन्धुओं से निवेदन है कि—

पाँच सौ पचास रु० (५५०-०० रु०) **बैङ्क - ड्राफ्ट/मनीआर्डर/पोस्टल - आर्डर** द्वारा भेजकर **'चण्डी' के आजीवन सदस्य** बनने की कृपा करें।

बैङ्क ड्राफ्ट **'कौल-कल्पतरु' चण्डी, इलाहाबाद** के नाम तथा पोस्टल आर्डर—**ऋतशील शर्मा, चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद** के नाम बनवाने की कृपा करें।

'चण्डी' के **'आजीवन-सदस्य'** को **'चण्डी'** जीवन-पर्यन्त, जब तक **'चण्डी'** प्रकाशित होती रहेगी, प्रति-वर्ष भेजी जाएगी।

विशेष—'चण्डी' की विशेषाङ्क-योजना के अन्तर्गत वर्ष में चार-पाँच विशेषाङ्क पुस्तक-रूप में प्रकाशित होते हैं। वे विशेषाङ्क **'आजीवन सदस्य'** को रियायती मूल्य की वी० पी० द्वारा भेजे जाएँगे।

'रज-रप्पा तीर्थ'—एक संस्मरण

● श्री अमरसिंह 'अमर', प्रयाग (उ० प्र०)

प्रस्तर-शिलाओं के बीच धावित बलिष्ठ **'दामोदर' नद** और प्रस्तर-खण्डों को धारण किए, उनसे सुसज्जित **'भैरवी' सरिता** ! जैसे कि कठिन-कठोर बाधाओं की उपेक्षा करता-सा, मिलन को आतुर, वह बलिष्ठ-पुष्टवक्षी असंसारी शक्तिमान् पुरुष और उससे भी तीव्र भावना में भीगी, प्रस्तर-खण्डों की मुण्डमाल मङ्गल-सूत्र-धारिणी, अमल-श्वेत-वर्णी उच्चस्थ भैरवी—अलौकिक प्रणय-स्पन्दन की झंझावाती गति से प्रेरित ! दिव्य **विपरीत-रति** का साकार्य और इस अधोमुख त्रिकोणात्मक, सङ्गम-शक्ति-स्थल पर, कामाख्या योनि-पीठ का जीवन्त स्वरूप एवम् त्रिकोण की ऊर्ध्व - अवस्थित भुजा पर विशाल मन्दिर के गर्भ-गृह में त्रिशिरा भगवती छिन्नमस्ता की महिमा-मयी दिव्य प्रतिमा !! भगवती से अपने दुःख-निवारण हेतु प्रार्थना-रत नर-नारियों के कातर चेहरे, साथ ही उनके प्रफुल्लित चेहरे भी, जो पहले माँ से अपना रोना - धोना कर गए थे और माँ की अगाध कृपा से जिनके मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं, वह भी—कृतज्ञता को अभिव्यक्ति देने, बलि - सामग्री के साथ ! माँ का आशीर्वाद यहाँ सभी को सुलभ ।

दृष्टान्तों की कमी नहीं है । सभी के अपने आत्म-निवेदन, अपनी कथाएँ हैं, अपने संस्मरण हैं । रेणुका-रक्षिका वज्रा माँ का आँचल सन्तानों को सदा सुरक्षा प्रदान करता है । डाकिनी, वर्णिनी की भाँति सभी मर्त्यों की भी क्षुधा शान्त करने, उन्हें सभी प्रकार त्राण देने को माँ सदैव तत्पर रहती हैं । माँ त्रिशिरा का यह विस्तारित स्वरूप है । भौतिक रूप से भी उपर्युक्त नद-नदी का दर्शन अलौकिक आनन्ददायी है । शस्य-श्यामला वातावरण के बीच अगणित प्रस्तर-खण्डों से आभूषित, भैरवी के स्वच्छ पारदर्शी जल में अनवरत कल-कल सङ्गीत के बीच स्नान अपने आप में एक अलग ही विशिष्ट अविस्मरणीय अनुभव है । ऐसे सिद्ध-पीठ में, इस नैसर्गिक वातावरण में—लघु काल का भी प्रवास जीवन को कृतार्थ करता है, सौन्दर्य का आनन्द-बोध कराता है ।

माँ की कृपा से ऐसा ही सुअवसर प्राप्त हुआ मुझे भी, गत १-३ अक्टूबर, १९९२ को लगे **'शाक्त-साधना-शिविर'** में भाग लेने का । विलक्षणता के प्रतीक राज-रप्पा के इस क्षेत्र ने मन्त्र-मुग्ध कर दिया । इसी परिसर में निर्मित आद्या माँ दक्षिणा काली, श्रीकाल-भैरव, बटुक-भैरव, माँ तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, धूमावती, बगला, मातङ्गी, कमला, श्रीगणेश, महा-'वीर' हनुमान, श्री मधुमती माई, मनसा माई, श्री राधा-कृष्ण, सूर्यनारायण, नव-ग्रह, विश्व-रूपिणी दुर्गा, विश्व-रूप श्रीकृष्ण प्रभृति के एक ही परिसर में निर्मित विशाल मन्दिर एवम् यज्ञ-कुण्ड, बलिवेदियाँ, पञ्च-मुण्डी आसन एवम् पञ्च-वटी अन्यत्र अनुपलब्ध हैं । यहीं पूज्य गुरुजी के संरक्षण में, गुरु-भाइयों के साथ, दिव्य मन्दिरों में देवता के समक्ष, स-स्वर 'ध्यान' - पाठ एवम् प्रणाम के कार्यक्रम, हमें भाव - विह्वल कर उन पवित्र क्षणों में अशरीरता का अनुभव करा गए ।

शिविर में, देश के कोने-कोने से पधारे साधकों-भक्तों को निवास, भोजन आदि की त्रुटि-हीन सुविधाएँ उपलब्ध थीं । वृहत् पूजन और पूज्य गुरुदेव के सभापतित्व में उनके तथा अन्य महात्माओं, साधकों एवम् आचार्यों के मार्गदर्शी अमूल्य प्रवचन एवम् श्रीयन्त्र-पूजन आनन्द दे गए, कहीं कोई अशांति नहीं, कोई असुविधा, कोई शिकायत नहीं ।

आशा है, माँ की दया से साधकों, भक्तों में ऐसी स्फुरणा अंकुरित होगी कि वे इस सिद्ध-पीठ के प्रबन्धन में, तन-मन-धन से भाग लेंगे तथा साधना के इस पक्षद्वारा भी अपना जीवन सार्थक करेंगे ।

पत्रकारों की दृष्टि में :

सिद्ध-क्षेत्र रज-रप्पा का त्रि-दिवसीय साधना-शिविर

भारत के आध्यात्मिक इतिहास में कदाचित् पहली बार अपने ढँग का अनूठा **'त्रि-दिवसीय साधना-शिविर'** बिहार प्रदेश के हजारीबाग जनपद में राँची के निकट **'रजरप्पा'** के **'सिद्ध-क्षेत्र'** में १-२-३ नवम्बर, १९९२ को आशातीत सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इस सफलता में **'राष्ट्र-भाषा हिन्दी के पत्रकारों'** ने भी सम्भवतः पत्रकारिता के इतिहास में पहली बार सक्रिय सार्थक योगदान किया। उन्होंने **'तन्त्र'** एवं **'शाक्त-साधना'** के प्रति गम्भीरतापूर्वक रुचि ही नहीं दिखाई, बड़े संयत-भाव से साधकों से वार्तालाप किया और उस सबको तथ्यात्मक शैली में अपने-अपने समाचार-पत्रों में चित्र-सहित प्रकाशित भी किया। कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

दैनिक 'आज', दिनाङ्क ३ नवम्बर, १९९२ :

बौद्ध एवं जैन-धर्म के प्रहार से तन्त्र-विद्या गोपनीय

राँची १ नवम्बर : प्रसिद्ध तन्त्र-शास्त्री पण्डित रमादत्त शुक्ल (प्रयाग) और धर्माध्यक्ष पण्डित महा-मेधानन्द सरस्वती (उड़ीसा) ने कहा कि कतिपय भ्रष्टाचारियों ने 'तन्त्र-शास्त्र' का दुरुपयोग कर इसे बदनाम किया है। इसी कारण अच्छे साधकों ने तन्त्र-शास्त्र' को गुप्त कर दिया। यह शास्त्र पूर्णतः विज्ञान-सम्मत है।

'कुमुद प्रीता ट्रस्ट' द्वारा 'मां छिन्न-मस्तिका सिद्ध-पीठम् रजरप्पा' में आयोजित त्रिदिवसीय 'दश महाविद्या साधना-शिविर' में पत्रकारों से बातचीत करते हुए दोनों विख्यात तन्त्र-शास्त्रियों ने ये विचार व्यक्त किए। पण्डित रमादत्त शुक्ल ने कहा कि यह भ्रान्ति है कि 'तन्त्र' के माने जादू-टोना है। जैसे चार वेद हैं, वसे तन्त्र भी शास्त्र हैं, अपार साहित्य है। इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया गया सर जॉन उडरफ द्वारा, मगर हमारे देश-वासी इसे नहीं जान पाए। इसकी जानकारी हेतु 'चण्डी' नामक पत्रिका का प्रकाशन किए जाने की पण्डित शुक्ल जी ने जानकारी दी। उन्होंने विस्तारपूर्वक चर्चा करते हुए कहा कि 'वाम-मार्ग' की बदनामी तो हुई क्योंकि उसमें पञ्च-मकार का प्रयोग होता है (मद्य, मांस, मीन, मदिरा, मैथुन)। इन पाँचों चीजों के द्वारा, जो पतन की ओर ले जाती हैं, 'तन्त्र' के माध्यम से उत्थान का मार्ग पाया जाता है, मगर भ्रष्टाचारियों ने इन (पञ्च-मकार) का दुरुपयोग कर 'तन्त्र-शास्त्र' को बदनाम किया। स्त्री भोग के रूप में नाश करती है, पर माता के रूप में पोषक हो जाती है।

पण्डित रमादत्त शुक्ल ने जानकारी दी कि वैदिक मार्ग में सिद्धान्त है और तन्त्र में पूजन क्रियात्मक रूप में होता है, मगर कुछ लोगों द्वारा इसका दुरुपयोग किए जाने के कारण अच्छे साधकों ने इसे गुप्त कर दिया। शाक्तों ने वैदिक परम्परा को आज भी बनाए रखा है।

रजरप्पा-स्थित 'मां छिन्न-मस्तिका मन्दिर' सहित दसों महा-विद्याओं के एक स्थान पर पूजन-स्थल और नद (दामोदर) तथा नदी (भैरवी) के सङ्गम की महानता और उसके आध्यात्मिक महत्त्व की चर्चा भी पण्डित शुक्ल जी ने की। उन्होंने बताया कि विदेशों में भी इस पर अनुसन्धान किया जा रहा

है। उन्होंने भारत के प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थों में छिपे तत्त्वों के गूढ़ रहस्य को बताया। उन्होंने कहा कि ऋषियों ने अनुसन्धान कर तत्त्व-ज्ञान दिया और परमाणु-ऊर्जा आदि का आविष्कार सभी संस्कृत ग्रन्थों की ही देन है। 'शाक्त-धर्म' को बताते हुए उन्होंने बताया कि इसके अन्तर्गत सात आचार हैं।

श्री मेधानन्द सरस्वती ने बताया कि वेदों में यज्ञों से काम चलता था। पूजा शाक्तों की है। सभी वीज-मन्त्र, तान्त्रिक-मन्त्र शाक्तों के हैं। 'आगम' शक्ति-साहित्य है। उन्होंने बताया कि बौद्धों पर 'शक्ति-साहित्य' का प्रभाव है। पूजा के लिए सिर्फ श्रद्धा और विश्वास की जरूरत है। यदि मन में अटूट श्रद्धा - विश्वास है, तो सिद्धि अवश्य मिलेगी। जो 'मां' के पास जाएगा, 'माँ' के निकटतम हो जाएगा।

महामेधानन्द जी ने 'सिद्ध-पीठ रजरप्पा' के माहात्म्य की चर्चा करते हुए कहा कि प्राकृतिक दृष्टि से सम्पूर्ण भारतवर्ष में यह स्थान अतुलनीय है। दसों महा-विद्याओं सहित शिव, गणेश आदि देवताओं का एकत्र समावेश यहाँ हो गया है। इसलिए लोगों का कर्तव्य है कि इस स्थान पर प्रकाश डाला जाए, ताकि इस स्थान का महत्त्व सारे देश में फैले। सारे देश के लोग इसे जान सकें। बिहार-वासियों का यह कर्तव्य है कि इस महान् स्थान की रक्षा करें। प्रेम, भक्ति, विश्वास से पूजन में किसी को मनाही नहीं। चाहे वह किसी भी जाति, धर्म का हो—यही 'शाक्त - धर्म' है।

'कुमुद प्रीता ट्रस्ट' के ट्रस्टी बी. बी. शरण ने बताया कि साधक संचित विद्या को अपने साथ लेकर चले जाते थे। उनकी साधना का लाभ अन्य नहीं उठा पाते थे। इसी कारण इस शिविर का आयोजन किया गया ताकि महान् साधकों, तान्त्रिकों से जानकारी प्राप्त कर सकें। हमारा प्रयास है कि 'शाक्त-धर्म' के बारे में लोग जानकारी प्राप्त करें, उसे समझें और ग्रहण करें।

दैनिक 'राँची एक्सप्रेस', दिनाङ्क २ नवम्बर, १९९२ :

तन्त्र-शास्त्र पूर्णतः विज्ञान-सम्मत है

राँची। प्रसिद्ध तन्त्र-शास्त्री पण्डित रमादत्त शुक्ल (प्रयाग) एवं पण्डित महामेधानन्द सरस्वती (पुरी) ने कहा है कि तन्त्र-शास्त्र एवं शाक्त - सम्प्रदाय पर बौद्ध एवं जैन धर्म के प्रहार के कारण यह विद्या गोपनीय हो गई है। उन्होंने कहा कि भारत में तन्त्र-शास्त्र अब भी उपेक्षित है, जबकि विदेशी इस पर शोध कर रहे हैं।

पण्डित शुक्ल एवं पण्डित सरस्वती रविवार को यहाँ से लगभग ७० किलोमीटर दूर 'रजरप्पा' में 'कुमुद प्रीता ट्रस्ट' के तत्त्वावधान में आयोजित 'दस - विद्या साधना - शिविर' के उद्घाटन के बाद सम्वाददाताओं से बातचीत कर रहे थे। शिविर में देश भर के लगभग २०० तन्त्र-साधक भाग ले रहे हैं।

पण्डित रमादत्त शुक्ल ने कहा कि कुछ भ्रष्ट लोगों ने 'तन्त्र-शास्त्र' का दुरुपयोग करके इसे बदनाम किया है। कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश सर जॉन वुडरफ ने तन्त्र की दीक्षा लेकर 'महानिर्वाण तन्त्र' सहित 'तन्त्र-शास्त्र' की कई पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इधर 'चण्डी' पत्रिका एवं हिन्दी में 'तन्त्र - साहित्य' के प्रकाशन के बाद तन्त्र - शास्त्र के बारे में लोगों का भ्रम कुछ समाप्त हुआ है।

पण्डित शुक्ल ने बताया कि तन्त्र की वाम-मार्गी साधना में पञ्च - मकारों (मद्य, मांस, मीन, मुद्रा एवं मैथुन) का प्रयोग किया जाता है। 'मद्य' का तात्पर्य अग्नि-तत्त्व से, मांस का 'पृथ्वी-तत्त्व' से,

'मीन' का जल-तत्त्व से, 'मुद्रा' का तात्पर्य अनाज से बने पदार्थ अथवा 'वायु-तत्त्व' से तथा 'मैथुन' का तात्पर्य 'आकाश-तत्त्व' अथवा शून्य से है। इन्हीं पाँच तत्त्वों से मानव-शरीर का निर्माण भी हुआ है।

वेदों में भी 'तन्त्र-शास्त्र' ही सूत्र हैं। सभी वैदिक पूजाएँ 'तन्त्र-शास्त्र' पर ही आधारित हैं। वैदिक परम्परा के अनुसार यज्ञों में आहुति देना तन्त्र-शास्त्र की ही पद्धति है। जगद्गुरु आदि शङ्कराचार्य ने भी भारत के चार मठों में 'श्रीयन्त्र' की स्थापना की, जिसकी पूजा मद्य एवं मांस से होती है। 'वामाचार' में मद्य एवं मांस का सेवन वर्जित नहीं है लेकिन उसे इष्टदेव को अर्पित करके ही ग्रहण करने का प्रावधान है। तन्त्र-साधक द्वारा 'मद्य' उसी सीमा तक ग्रहण करना चाहिए, जब तक उसका मन चञ्चल न हो। शाक्त-सम्प्रदाय में महिलाओं को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। भारतीय तन्त्र - शास्त्र पूर्णतया वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित है। विष्णु अकाश-तत्त्व, गणेश पृथ्वी-तत्त्व, शिव जल-तत्त्व, सूर्य तेज-तत्त्व और शक्ति प्राण अथवा वायु-तत्त्व की प्रतीक है। यही पञ्च-देव हैं, जिनका मानव शरीर में समावेश है। तन्त्र-शास्त्र में मांस एवं मदिरा को शिव-शक्ति का प्रतीक माना जाता है।

'रजरप्पा' के अतिरिक्त भारत में कहीं भी इन शक्तियों का स्थल एक साथ नहीं है। दामोदर नद में ऊपर से भैरवी नदी का मिलन 'विपरीत रति' का प्रतीक है। तन्त्र-साधकों के लिए 'रजरप्पा' का बड़ा महत्त्व है।

उड़ीसा के पण्डित महामेधानन्द सरस्वती ने कहा कि—बौद्ध - धर्म में भी शाक्त-साहित्य का प्रभाव है। वैदिक धर्म उच्च-स्तरीय वर्ग का धर्म है, जबकि शाक्त-धर्म में वर्ग-भेद का कोई महत्त्व नहीं है। मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा कर तन्त्र-साधक उसमें अपने प्राणों को स्थापित करता है। वैदिक धर्म विश्व-भावना की प्राण-प्रतिष्ठा करता है, जबकि तन्त्र-साधक अपने उद्देश्य के एक विन्दु की। 'विश्व' विशाल है और 'विन्दु' एक निर्दिष्ट उद्देश्य का प्रतीक है। व्यवहार में धर्म को लाने से परिबर्तन होता है। श्रद्धा एवं विश्वास मन में होने पर सिद्धि अवश्य मिलती है। 'ओंकार' शब्द वैदिक परम्परा में शूद्रों के लिए सुनना तक वर्जित है। 'ओंकार' शब्द पवित्र होने के कारण यदि शूद्र इसे सुनेगा, तो पवित्र होगा, न कि 'ओंकार' अपवित्र होगा! यह भेद-भाव 'शाक्त-धर्म में नहीं है। 'रजरप्पा' न केवल प्राकृतिक दृष्टि से श्रेष्ठ है बल्कि सभी देवताओं का यहाँ समावेश भी है।

'कुमुद प्रीता ट्रस्ट' के संस्थापक श्री विपिनविहारी शरण ने कहा कि 'दश-विद्या साधना-शिविर' के आयोजन का उद्देश्य 'तन्त्र-विद्या' के सम्बन्ध में आम लोगों को जानकारी देना तथा इसकी गोपनीयता को उजागर करना है। इस शिविर में पञ्जाब, कर्नाटक, हरियाणा, उत्तर प्रदेश एवं बिहार के साधक भाग ले रहे हैं।

दैनिक 'देशप्राण', दिनाङ्क ३ नवम्बर, १९९२ :

'तन्त्र-विद्या' एक शास्त्र है

'चण्डी' पत्रिका के मानद सम्पादक पं. रमादत्त शुक्ल ने कहा कि 'तन्त्र-विद्या एक शास्त्र है। यह कोई जादू-टोना नहीं, अपितु अपार साहित्य है, जो शनैः शनैः लुप्त-प्राय होता जा रहा है। तन्त्र-विद्या के लुप्त होने का मुख्य कारण यह है कि कुछ भ्रष्टाचारी तत्त्व इस विद्या का गलत उपयोग कर

रहे हैं। इससे क्षुब्ध होकर एवं अच्छे शिष्य के अभाव के कारण विद्वान् गुरु-वर इसे गुप्त रख लेते हैं एवं उनकी मृत्यु के साथ यह विद्या भी लुप्त होती जा रही है। आज आवश्यकता है कि अच्छे साधक खोज कर उन्हें दीक्षा दी जाए तथा धूर्त लोगों द्वारा इसके दुरुपयोग पर अंकुश लगाया जाए।'

पं. शुक्ल ने बताया कि 'मद्य' को अग्नि - तत्त्व माना गया है, क्योंकि यह जलाने का कार्य करता है, परन्तु एक सीमा तक इसका उपयोग हानि-कारक नहीं है। मद्य-पान इतना अधिक नहीं किया जाना चाहिए कि मन बहकने लगे। 'मांस' की तुलना पृथ्वी-तत्त्व से की है अर्थात् मिट्टी-तत्त्व। मद्य-रूपी अग्नि को बुझाने का कार्य यह मांस-रूपी पृथ्वी-तत्त्व करता है। 'मत्स्य' की तुलना जल-तत्त्व से की गई है, क्योंकि मछली हमेशा जल में ही रहती है। 'मुद्रा' को तन्त्र-विद्या में वायु-तत्त्व बताया गया है। यहाँ मुद्रा का बोध रुपए-पैसे से नहीं वरन् अन्न से बने हुए पदार्थ के रूप में होता है। 'मैथुन' को आकाश-तत्त्व की संज्ञा दी गई है, जो शून्य है। तन्त्र बताता है कि स्त्री शून्य के समान है, जो पूजनीय है। जो व्यक्ति इसे भोग की वस्तु समझकर गलत दृष्टि से देखेगा, उसका नाश निश्चित है।

पं. शुक्ल ने कहा कि 'मदिरा-पान' पर अंकुश की बात इसलिए भी नहीं की जाती कि इसमें अलकोहल होता है, जिसका प्रयोग औषधि के रूप में भी किया जाता है। वैदिक संस्कृति में भी मदिरा-मांस के निषेध का वर्णन नहीं मिलता। यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि लोग तन्त्र-मन्त्र-विद्या सीखना नहीं चाहते, जबकि अन्य कई देशों के लोग भारत में आकर इस विषय पर शोध-कार्य कर रहे हैं।

पण्डित शुक्ल ने 'रजरप्पा' स्थित पवित्र स्थल 'मां छिन्न-मस्तिका मन्दिर' का वर्णन करते हुए कहा कि यह कई दृष्टियों से भारत में अपने ढङ्ग का अलग धार्मिक स्थल है। प्रथम तो यहाँ 'नद' एवं 'नदी' का बड़ा विचित्र सङ्गम है। 'भैरवी' (भेड़ा) को नदी एवं 'दामोदर' को नद बताते हुए, उन्होंने कहा कि 'भैरवी' स्त्री-लिङ्ग एवं 'दामोदर' पुल्लिङ्ग-रूप में प्रयुक्त होता है। भैरवी दामोदर के ऊपर गिरती है। ठीक उसी प्रकार जैसे माँ काली भगवान् शिव के ऊपर खड़ी हैं।

उड़ीसा-निवासी प्रसिद्ध तान्त्रिक महा-मेधानन्द सरस्वती ने कहा कि आज सारी पूजा शाक्त-धर्म के अनुसार ही हो रही है। 'शाक्त-धर्म' जाति एवं धर्म में विभेद नहीं करता। यह एक निर्दिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आत्म-चिंतन की शिक्षा देना है। धर्म को धारण करने से ही धर्म हमें अपनाता है। 'तन्त्र विद्या' में गोपनीयता है, परन्तु यह तभी तक रहती है, जब तक योग्य शिष्य नहीं मिल जाता। मन में श्रद्धा या विश्वास हो, तो सिद्धि अवश्य प्राप्त होगी।

बलि देने एवं प्रसाद-रूप में मांस खाने से जीवात्मा को मुक्ति मिलती है। 'मांस' के सेवन से पूर्व इसे मां को अर्पण करना चाहिए। जो बलि देना हिंसा बताते हैं, उन्हें सोचना चाहिए कि धान भी काटा जाता है, वह भी हिंसा हुई।

'कुमुद प्रीता ट्रस्ट' के न्यासी विपिनबिहारी शरण ने तीन दिवसीय सम्मेलन के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि 'तन्त्र-शास्त्र' लोक-धर्म है। इसका उद्देश्य 'शाक्त-समाज' को सङ्गठित करना, शाक्त-धर्म की शिक्षा देना एवं उनसे कुछ ग्रहण करना है। 'रजरप्पा मन्दिर' के निर्माण में सुकुमार बसु ठाकुर की अग्र-गण्य भूमिका रही है।

अघोरेश्वर अवधूत राम

श्री पं० बलराम जी दुबे, लखनऊ (उ० प्र०)

२६ नवम्बर, १६६६ को देश और काल ने महा-काल के एक प्रिय-पात्र को कपाल-खप्पर के महा-प्रयाण पर विदा किया। १२ सितम्बर, १६३७ को 'बिहार' के 'भोजपुर' जनपद के ग्राम 'गुण्डी' में अवतरित बालक भगवानसिंह ने अल्प-काल में ही साधना के समस्त पड़ावों को पार कर **'अघोरेश्वर'** पद प्राप्त कर लिया था। जन्म और जाति के बन्धन तो उन्होंने बाल्य-काल में ही पाँच वर्ष की अवस्था में गृह त्यागकर तोड़ दिए थे। देह के बन्धन चिर-तपस्वी, बाल-ब्रह्मचारी, जन्म-जात संन्यासी को कभी स्पर्श नहीं कर पाए। देश और काल के बन्धनों को भी, अपनों से दूर, 'अमेरिका' के 'न्यूयार्क' नगर में खोलकर, उन विदेह ने मुक्ति-पथ को सभी के लिए प्रशस्त कर दिया।

'गङ्गा' और 'सोन-भद्र' के किनारों को बालक 'अवधूत' के नन्हे-नन्हे पाँवों ने सहलाया था। साधना-पथ पर अग्रसर स्वयम्भू बाल-चरणों ने स्थूल और सूक्ष्म जगत् की मञ्जिलें खोजी थीं। शव-वस्त्रों के टुकड़ों में लिपटे हुए शरीर पर सर्दी की रातों और गर्मी के तपते हुए दिवसों के प्रकोप को आकाश की तरह झेला था। आकाश-वृत्ति थी—यदि किसी ने भिक्षा के रूप में अन्नादि दे दिया, तो उसे खाकर सन्तुष्ट हो गए। आगे बढ़ गए, कहीं देर तक ठहरे नहीं—रुके नहीं, कोई पड़ाव नहीं! 'विन्ध्य - वासिनी' के सान्निध्य में 'काली - खोह' में साधना की। अलख जगाते हुए, विन्ध्य-पर्वतों की उपत्यकाओं में विचरते रहे। 'साधना' की इस 'अवधूतावस्था' की कल्पना करते हुए बहुत पहले की स्व-लिखित पंक्तियाँ साक्षात् हो उठीं—

"एक कफन आधा तन ओढ़े, पथ से दूर किनारे—
देखा, औघड़ ! एक तुझे ही, निश्चल अडिग पड़ा रे !"

अवधूत राम की बाल्य एवं युवावस्था एक साधनात्मक 'पड़ाव' की खोज में भटकते हुए व्यतीत हुए। कालान्तर में भगवान् विश्वनाथ की नगरी 'काशी' में कुछ समय तक उन्हें विश्राम मिला। **'क्रीं-कुण्ड'**—कीनाराम-स्थल के तत्कालीन महन्त श्री राजेश्वर राम जी से उन्होंने **'अघोर-पन्थ'** की विधि-वत् दीक्षा ली और काशी के श्मशान-घाटों पर वे चिर-काल तक अलख जगाते रहे।

'काल' कभी कील पर रुकता नहीं। **'अघोरेश्वर'** को विश्वनाथ की नगरी कीलित नहीं कर सकी। साधना की स्वयम्भू-यात्रा में पाँवों ने स्वयं चलकर मञ्जिलें खोजीं। पड़ाव मिलता, किन्तु वस्त्रों के समान उसे त्याग देते। **'क्रीं-कुण्ड'** को भी त्याग दिया! कई आश्रम बने, किन्तु बनते ही उन्हें छोड़कर असीम की यात्रा पर चल पड़ते। 'अघोर' तान्त्रिक नभ-मण्डल के उदित रजस्-प्रकाश में **'मानस-चक्र'** अल्पायु में ही जाग्रत् हो उठा, जब 'अघोरेश्वर' ने **'अष्ट-कमल-दल'** के साकार-दर्शन किए। उस 'कमल' पर घूमता हुआ 'मन' जब हृदय-यन्त्र पर स्थिर हो जाता है, तब मन बुद्धि में समाहित हो जाता है, बुद्धि चित्त में और चित्त आत्म-स्वरूप में। साधक 'सिद्ध' बन जाता है। समष्टि के 'मानस-चक्र' पर समाहित होने पर वह 'सिद्ध' साधक समस्त जीवों के मन का राजा बन जाता है। मन की बात उसे बतानी नहीं पड़ती। उक्त कमल वही **'अष्ट-दल-कमल'** है, जिसके आठ रङ्गीन पटलों पर इन्द्रादि अष्ट-दिक्पालों एवं अष्ट-भैरवों के साथ ब्रह्माणी आदि अष्ट-महा-देवियाँ निवास करती हैं।

इन समग्र देवी-देवताओं की सम्मिलित प्रसन्नता होने पर ही साधक को उक्त दुर्लभ 'कमल' का साक्षात्कार प्राप्त होता है। इस **'अष्ट-दल-कमल'** के ही मध्य में श्री माता सर्वेश्वरी का त्रिकोणात्मक दरबार सजा रहता है। 'मानस-चक्र' के अधीश्वर होते हुए भी अघोरेश्वर अवधूत राम ने कभी दूसरों पर यह भाव प्रकट नहीं किया। उन्होंने सङ्केत अवश्य किया है कि **'अष्ट-दल-कमल'** के दर्शन के बाद मन में उठी इच्छाएँ स्वयं पूर्ण होने लगी थीं।

जन्म-जात गुण के रूप में ईश्वर-प्रदत्त शक्ति को अघोरेश्वर राम ने जन-कल्याण में लगाया। बचपन से ही उनकी अँगुलियों को ईश्वर - प्रदत्त यह दिव्य शक्ति प्राप्त थी कि मात्र उनके स्पर्श से असाध्य कुष्ठ-रोग दूर हो जाता था। ईश्वर की इस अलौकिक अनुकम्पा को दीन-दुखियों में वितरित करने के लिए ही उन्होंने 'वाराणसी' में गङ्गा के उस पार एक सर्वथा उपेक्षित स्थान पर **'पड़ाव'** लिया और **'अवधूत भगवान राम कुष्ठ सेवा आश्रम'** की स्थापना की। २० वर्ष की आयु में ही उन परम-सिद्ध अघोरेश्वर महा-प्रभु ने २१ सितम्बर, १९६१ को **'श्री सर्वेश्वरी-समूह'** की स्थापना कर **'अघोर-साधना'** को समाज-सेवा का मङ्गल स्वरूप प्रदान किया। श्रीरामकृष्ण परमहंस की इष्ट-देवी **'काली'** ही श्री अघोरेश्वर की इष्ट-देवी **'सर्वेश्वरी'** हैं, जिनका गुण - गान 'श्री ललिता - सहस्र-नाम' में निम्न प्रकार हुआ है—

सर्व-शक्ति-मयी सर्व-मङ्गला सद्-गति-प्रदा। सर्वेश्वरी सर्व-मयी, सर्व-मन्त्र-स्वरूपिणी ॥

'अघोर-पन्थ' के सम्बन्ध में फैली भ्रामक मान्यताओं के विकार को दूर कर अघोरेश्वर भगवान राम ने इसे बच्चों, बूढ़ों, बालिकाओं और नारियों के लिए ग्राह्य तथा मङ्गलकारी बनाया। **'तन्त्र-साहित्य'** का वैज्ञानिक विश्लेषण उन्होंने स्वयं किया एवं सुपात्रों से कराया। **'कुण्डलिनी-साधना'** के सन्दर्भ में मैं सद्-गुरु की खोज में था। अष्ट - पाशों में बँधे हुए शरीर के संस्कारों पर दम्भ का सूक्ष्म शासन चलता है और वह किसी अन्य का अनुशासन नहीं मानता। साधना-सरोवर में उतरते ही, भावों में भवानी प्रवाहित तो होने लगती हैं, किन्तु अस्थिर चरणों को धार में बहा ले जाती हैं। साधक हताश हो बहने लगता है। उसे कोई किनारा नहीं मिलता। अमृत-कूप में उतरने के लिए साधक को किसी रस्सी की आवश्यकता होती है, जिसे गुरु प्रदान करता है। मेरी समस्त मान्यताओं को ठुकराकर स्वयम्भू भगवान राम ने तन्त्र की सारी कुण्ठाओं से मुझे मुक्त किया। मेरी भाव-तरङ्गों को समझकर वे अमृत-साधना-पथ पर मेरे सतत साक्षी बने रहे। एक ऐसा सम्बन्ध, जो संस्कारों के बन्धन को न मान कर एक-दूसरे को अन्तरात्मा से अङ्गीकार करता है। कुछ ऐसा ही सम्बन्ध १९८४ में मेरे साथ स्थापित हुआ, जो अन्त तक बना रहा।

श्री गुरुदेव से मेरा यह सम्बन्ध परोक्ष रूप से ही रहा, जबकि कुण्डलिनी-यात्रा के दुर्गम पथ पर अलौकिक अनुभवों के रूप में अवतरित होकर वे कभी स्वप्न, कभी निद्रा, तो कभी जाग्रत्-रूप में दिग्दर्शन किया करते थे।

'कुण्डलिनी की इस साधना' में साधकों को छाती पर पत्थर रखकर आगे बढ़ना पड़ता है और संस्कारों से जकड़े गृहस्थ की छाती इतनी ठोस नहीं होती कि वह इस **'वीर-साधना'** की वेदना को झेल सके। समस्त ग्रहों का एक साथ आक्रमण—समस्त सुर और असुरों से एक साथ भिड़न्त ! है कोई जो झेल सके प्रकृति के हर प्रहार को ! मेरी हताश मनोदशा को समझकर सद्-गुरु ने एक बार कहा था ... **'ग्रहों का प्रकोप था। माता-पिता की कृपा से बच गए। खैर मनाइए...।'** फलतः मैंने उक्त साधना को

प्रणाम किया और सद्-गुरु को समर्पित कर दिया। स्वयं से जूझता हुआ साधक जब थक जाता है, सद्-गुरु बाँहें थाम लेते हैं।

अवधूत भगवान श्रीराम के दर्शन-लाभ के बाद मुझे सिद्धों के दर्शन अनायास होने लगे। सबकी अनुकम्पा प्राप्त हुई। सभी ने पड़ाव दिए। एक 'गुरु' की सर्व-व्यापकता प्रकट और परोक्ष—हर रूप में अनुभव में आई। 'समष्टि' और 'व्यष्टि' की जो एकात्मकता बाहर व्याप्त है, वही अन्तर में प्रतिष्ठित है—इस 'भेद' और 'अभेद' की व्यापकता, परिभाषित सीमाओं से बाहर निकलकर स्वतः उद्‌भासित हुई।

'अमेरिका' से प्रथम बार स्वास्थ्य लाभ कर लौटने के बाद सुदूर क्षितिज की ओर देखते हुए और प्रकट रूप से मुझे **'तन्त्र-साहित्य'** पर लिखने के लिए प्रेरणा देते हुए, अघोरेश्वर भगवान राम ने अपनी दो पुस्तकें ('अघोरेश्वर सम्वेदन-शील' एवं 'औघड़ भगवान राम') मेरे हाथों में थमा दीं, जिनके बोझ से मैं एक फल-दार वृक्ष के समान झुक गया और आज तक शीश झुकाए चलता आ रहा हूँ।

कई वर्षों तक श्री गुरु-देव का शरीर अस्वस्थ रहा। 'किडनी'-प्रत्यारोपण के लिए उन्हें दो बार अमेरिका जाना पड़ा। तीसरी बार अस्वस्थ होने पर गत मई, १६६२ में पुनः वहीं गए। उसके बाद तो उनका पार्थिव शरीर ही वापस लौटा। मई में ही वे जब 'ऑल इण्डिया इन्स्टीट्यूट, नई दिल्ली' में स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे, मैं उनसे मिलने गया था। नीचे एक विचित्र प्राणी बीड़ी पीते हुए तथा कश को हवा में छोड़ते हुए दृष्टि-गोचर हुआ। उसे देखकर मेरे पाँव स्वतः रुके। नेत्र उसकी ओर उठे। उसकी जलती हुई आँखों से टकराए, मानों उस अगम दस्यु को वहाँ से हटने के लिए अनुशासन दे रहे हों। यह एक पुलिस-अधिकारी की आँखों का अनुशासन था या साधक का, कह नहीं सकता। वह, वहाँ दुबारा लौटने पर दिखाई नहीं दिया। हाँ, ऊपर पहुँचने पर सद्-गुरु बिस्तर पर बैठे हुए मिले, मानों मेरी प्रतीक्षा कर रहे हों!

मेरी आँखों में श्री गुरु को शारीरिक पीड़ा के प्रति गहरी चिन्ता थी। उन्होंने मेरी ओर देखा। अधरों पर धीमी आवाज उभर कर आई—**'देश' का क्या होगा**? दुहराते रहे, **'देश का क्या होगा?'** उनके स्वास्थ्य के बारे में मुझे कुछ पूछने का साहस ही नहीं हुआ। हर रोग में बिंधे हुए वाणों पर सोनेवाला विश्व-गुरु देश की चिन्ता से व्यग्र है! अपनी पीड़ा की ओर तो उन्होंने मेरा ध्यान जाने ही नहीं दिया! और लीजिए, जिन्हें बिस्तर से उठना मना था, वे स्वयं दूर तक छोड़ने के लिए टहलते हुए आए!!

व्यक्ति-गत पीड़ा को भुलाकर देश-काल की चिन्ता करनेवाले महान् **'अघोरेश्वर'** हमें २६ नवम्बर, १६६२ को अकेला छोड़कर चले गए! उनके महा-प्रयाण तक पीड़ा का जो सैलाब मजबूत कन्धों के किनारों पर रुका था, अचानक उमड़ पड़ा। आइए, देश और काल के मङ्गल के लिए अकाल-खप्पर में अवस्थित 'अघोरेश्वर' से प्रार्थना करें।

साधनमाला

[कार्त्तिक-अङ्क (अक्टूबर, ६२) से आगे]

(७८)

श्रीकार्तवीर्यार्जुन स्तोत्र पूजा-विधि

कार्तवीर्या खल-द्वेषी, कृत-वीर्य सूतो बली । सहस्र-बाहुः शत्रुघ्नो, रक्त-वासा धनुर्धरः ।।
रक्त-गन्धो रक्त-माल्यो, राजा स्मर्तु रभीष्टदः । द्वादशैतानि नामानि, कार्तवीर्यस्य यः पठेत् ।।
अनष्ट-द्रव्यता तस्य, नष्ट-द्रव्यस्य चागमः । सम्पदस्तस्य जायन्ते, राजानश्च वशं गताः ।।
आनयेत् स सुदूरस्थं, क्षेम-लाभ-युतं प्रियं । कार्तवीर्यार्जुनो नाम, राजा बाहु-सहस्र-भृत् ।।
तस्य संस्मरणादेव, हृतं नष्टं च लभ्यते । कार्तवीर्य महा-बाहो, सर्वं-दुष्ट-निवारणः ।।
सर्वं रक्ष सदा तिष्ठ, दुष्टान् नाशय पाहि माम् ।

फल-श्रुति—सहस्र-बाहुं स-शरं, स-चापं, रक्ताम्बरं, रक्त-किरीट-कुण्डलं, चौरादि-दुष्ट-भय-नाशनमिष्टदं । तं ध्यायन्महा-बालभिः जृम्भित- कार्तवीर्यम्, यस्य संस्मरणादेव सर्व-दुष्ट-क्षयो भवेत् । कार्तवीर्यार्जुन-स्तोत्रं, सहस्रावर्तितं यदि, वाञ्छितार्थं-फलं दद्यात्, शूद्रादौ यदि न श्रुतम् ।

विधि—'ॐ हन हन स्वाहा' मूल-मन्त्र है । १ हजार स्तोत्र-पाठ, ८ हजार मन्त्र का जप, वट-वृक्ष के नीचे आसन लगाकर । रवि से प्रारम्भ करे तथा मङ्गल तक करे । लाल वस्त्र पहने, लाल चन्दन लगावे । लाल भोजन करे, लाल तेल लगावे । लाल फूल, लाल चन्दन, घी, नीम का फूल हवन करे ।

(७९)

वैष्णवी अपराजिता

मन्त्र : श्रीः ह्रीं ॐ नमः कृष्ण-वाससे, सहस्र-हिंसिनि, सहस्र-वदने, महा-बले, अपराजिते, प्रत्यङ्गिरे, पर-सैन्य-पर-कर्म-विध्वंसिनि, पर-मन्त्रोत्सादिनि, रावे, भूत-दमनि ! सर्वान् देवान् बन्ध, सर्व-विद्यां छिन्धि छिन्धि, क्षोभय क्षोभय, पर-यन्त्राणि स्फोटय स्फोटय, सर्व-शृङ्खला त्रोटय त्रोटय, ज्वल ज्वल । जिह्वे, कराल-वदने, प्रत्यङ्गिरे ! क्रीं नमः ।

ॐ ततः सिद्धाम्बिकां नत्वा, जप्तव्यमपराजिताम् ।
महा-विद्यां वैष्णवीं तु, साधनेन समन्वितः ।।

यस्याः स्मरण-मात्रेण, सर्व-दुःख-क्षयो भवेत् तां विद्यां कीर्त्तयिष्यामि, शृणुध्व विप्र-पुङ्गवाः ।।

बिनियोग : ॐ अस्याः महा-विद्यायाः महा-वैष्णव्या श्रीअपराजितायाः श्रीमहा-देव ऋषिः । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्-वृहती-छन्दांसि । श्रीलक्ष्मी - नृसिंहो देवता । सर्व-रक्षार्थे जपे बिनियोगः ।

स्तुति : ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, ॐ नमो नारायणाय नमः । ॐ नमो अनन्ताय, सहस्र-शीर्षाय, क्षीरोदार्णव-शायिने, शेष-नाग-पर्यङ्काय, गरुड़-वाहनाय, अजयाय, अपराजिताय, पीत-निर्मल-वाससे, वासुदेव-प्रद्युम्नानिरुद्ध-हयः-शिर - वाराह - दामोदर-नृसिंह-वामन-त्रिविक्रम-राम-परशुराम-वर-प्रद ! नमोऽस्तु ते स्वाहा ! ॐ असुर-दैत्य-दानव-यक्ष-राक्षस-भूत-प्रेत-पिशाच-कूष्माण्ड-गन्धर्व-सिद्ध-योगिनी-शाकिनी-डाकिनी-लाकिनी-स्कन्द-प्ररोगमान् ग्रहान् स-नक्षत्र-ग्रहांश्चान्यान् हन हन, पच पच, मथ मथ, विध्वंसय विध्वंसय, विद्रावय विद्रावय, बिजय विजय । अपराजित, अमति-हत, सहस्र-नेत्र ! ज्वल ज्वल, मज्वल मज्वल, वय वय । शङ्खेन, चक्रेण, वज्रेण, शूलेन, गदया, मुशलेन, हलेन, चापेन भस्मीकुरु स्वाहा । सहस्र-बाहवे सहस्र-प्रहरणायुध ! जय जय ! विश्व-रूप, नित्य-रूप, बहु-रूप, माधव, मधु-सूदन, महा-वराह, महा-पुरुष, वैकुण्ठ-नारायण, पद्म-नाभ, गोविन्द, दामोदर, हृषीकेश, केशव, सर्वाशुभोत्सादन, सर्व-भूत-वशङ्कर, सर्व-दुःस्वप्न-प्रभेदन, सर्व-यन्त्र-प्रभञ्जन, सर्व-नाग-प्रबन्धन, सर्व-देव-महेश्वर, सर्व-बन्ध-विमोक्षण, सर्वाहित-प्रमर्दन, सर्व-ज्वर-प्रणाशन, सर्व-ग्रह-निवारण, सर्व-पाप-प्रणाशन, जनार्दन, जनानन्दक ! नमोऽस्तु ते स्वाहा ।

फल-श्रुति : इमामपराजितां परम-वैष्णवीं महा-विद्यां पठति सिद्धां । स्मरति विद्यां जपति पठति शृणोति स्मरति धारयति कीर्त्तयति वा । न तस्य वाटवग्नि-वातोपलाशनि-भयं, न विष-भयं न समुद्र-भयं, न ग्रह-भयं, न चौर-भयं, न श्वापद-भयं वा भवेत् । न क्वचिद्-रात्र्यन्धकार-स्त्री-विषय-राज-कुल-विबन्ध-सागर - विषौषध-गद-वशीकरण-विद्वेषोच्चाटन-बन्धन-बध-भयं वा न भवेत् । रात्रैर्मन्त्रैरुदाहृतैः सिद्ध्यै सिद्धयः पूजितैः । तद्-यथा—नमस्तेऽस्तु त्रिष्णोरयं मनुः, प्रोक्तं सर्व-काम-फल-प्रदः । सर्व-सौभाग्य-जननः, सर्व-भीति-विनाशनः । सर्वेषां पठतः सिद्धो, विष्णोः परम-वल्लभः । नानेन सदृशः किञ्चित्, दुष्टानां नाशनः परः । विद्या रहस्या कथितं, वैष्णव्येषाऽपराजिता । न्यसनीया शिरस्येषा, साक्षात् सत्त्व-गुणाश्रुपात् ।

।। इति वैष्णवी अपराजिता ।।

● प्रेषक : पं० कृष्णानन्द मिश्र वैद्य, प्रयाग

(८०)

श्रीसंग्राम-विजया विद्या

विनियोग : ॐ अस्य श्रीसंग्राम-विजया-विद्यायाः श्रीईश्वर ऋषिः । उष्णिक् छन्दः । श्रीचामुण्डा देवता, सर्व-कार्येषु जयार्थे, शत्रु-नाशार्थे वा जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास : शिरसि श्रीईश्वर-ऋषये नमः । मुखे उष्णिक्-छन्दसे नमः । हृदि श्रीचामुण्डा - देवतायै नमः । सर्वाङ्गे सर्व - कार्येषु जयार्थे (शत्रु-नाशार्थे वा) जपे विनियोगाय नमः ।

षडङ्ग-न्यास	कर-न्यास	अङ्ग-न्यास
ॐ ह्रां	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ ह्रीं	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
ॐ ह्रूं	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
ॐ ह्रैं	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
ॐ ह्रौं	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ॐ ह्रः	करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

ध्यान

अष्टा-विंश-भुजा चण्डी, असि-खेटक-धृक्-करौ । गदा-मुण्ड-युतौ चान्यौ शर-चाप-धरौ परौ ।।
मुष्टि-मुद्गर-संयुक्तौ, शङ्ख-खड्ग-युतौ परौ । ध्वज-वज्र-युतौ चान्यौ, स-चक्र-परशु-परौ ।।
डमरु-दर्पणाढ्यौ च, शक्ति-कुन्त-धरौ परौ । हलेन मुसलेनाढ्यौ, पाश-तोमर-संयुतौ ।।
ढक्का-पणव-संयुक्तौ, अभय-स्वस्तिकान्वितौ । तर्जनी च वर-मुद्रा-युतां ध्यायेच्छ्रीचामुण्डाम् ।।

इति ध्यात्वा, मानसोपचारैः सम्पूज्य, माला-मन्त्रं जपेत् । यथा—

श्रीईश्वर उवाच—संग्राम-विजयां विद्यां, पद-मालां वदाम्यहम् ।

ॐ ह्रीं चामुण्डे, श्मशान-वासिनि, खट्वाङ्ग-कपाल-हस्ते, महा-प्रेत-समारूढे, महा-विमान-समाकुले, काल-रात्रि, महा-गण-परिवृते, महा-मुखे, बहु-भुजे, घण्टा-डमरु-किङ्किणी-अट्टाट्टहासे ! किलि किलि, ॐ हूं फट् । दंष्ट्रा-घोरान्धकारिणि, नाद-शब्द-बहुले, गज-चर्म-प्रावृत-शरीरे, मांस-दिग्धे, लेलिहानोग्र-जिह्वे, महा-राक्षसि, रौद्र-दंष्ट्रा-कराले, भीमाट्टाट्टहासे, स्फुरद्-विद्युत्-प्रभे ! चल चल ! ॐ चकोर-नेत्रे ! चिलि चिलि । ॐ भीं भ्रुकुटी-मुखि, हुङ्कार-भय-त्रासनि, कपाल-मालावेष्टित-जटा-मुकुट-शशाङ्क-धारिणि, अट्टाट्टहासे !

किलि किलि । ॐ हूँ दंष्ट्रा-घोरान्धकारिणि, सर्व-विघ्न-विनाशिनि ! इदं कर्म साधय साधय । ॐ शीघ्रं कुरु कुरु, ॐ फट् । ॐ अंकुशेन शमय प्रवेशय । ॐ रङ्ग रङ्ग, कम्पय कम्पय । ॐ चालय । ॐ रुधिर-मांस-मद्य-प्रिये ! हन हन । ॐ कुट्ट कुट्ट, ॐ छिन्द, ॐ मारय, ॐ अनुक्रमय, ॐ वज्र-शरीरं पातय । ॐ त्रैलोक्य-गतं दुष्टमदुष्टं वा, गृहीतमगृहीतं वा, आवेशय । ॐ नृत्य, ॐ वन्द । ॐ कोटराक्षि, ऊर्ध्व-केशि, उलूक-वदने, करङ्किणि, ॐ करङ्क-माला-धारिणि ! दह, ॐ पच पच । ॐ गृह्ण । ॐ मण्डल-मध्ये प्रवेशय । ॐ किं विलम्बसि ? ब्रह्म-सत्येन विष्णु-सत्येन रुद्र-सत्येन ऋषि-सत्येन आवेशय । ॐ किलि किलि, ॐ खिलि खिलि, विलि विलि । ॐ विकृत-रूप-धारिणि, कृष्ण-भुजङ्ग-वेष्टित-शरीरे, सर्व-ग्रहा-वेशनि, प्रलम्बौष्ठिनि, भ्रू-भङ्ग-लग्न-नासिके, विकट-मुखि, कपिल-जटे, ब्राह्मि ! भञ्ज । ॐ ज्वाला-मुखि ! स्वन । ॐ पातय । ॐ रक्ताक्षि ! घूर्णय, भूमिं पातय । ॐ शिरो गृह्ण, चक्षुर्मीलय । ॐ हस्त-पादौ गृह्ण, मुद्रां स्फोटय । ॐ फट्, ॐ विदारय, ॐ त्रिशूलेन छेदय छेदय । ॐ वज्रेण हन हन । ॐ दण्डेन ताडय ताडय । ॐ चक्रेण छेदय छेदय । ॐ शक्त्या भेदय । ॐ दंष्ट्रया कीलय । ॐ कर्णिकया पाटय । ॐ अंकुशेन गृह्ण । ॐ शिरोऽक्षि-ज्वरमैकाहिकं द्वयाहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं, डाकिनी-स्कन्द-ग्रहान् मुञ्च मुञ्च । ॐ पच, ॐ उत्सादय, ॐ भूमिं पातय, ॐ गृह्ण । ॐ ब्रह्माणि ! एहि । ॐ माहेश्वरि ! एहि । ॐ कौमारि ! एहि । ॐ वैष्णवि ! एहि । ॐ वाराहि ! एहि । ॐ ऐन्द्रि ! एहि । ॐ चामुण्डे ! एहि । ॐ रेवति ! एहि । ॐ आकाश-रेवति ! एहि । ॐ हिमवच्चारिणि ! एहि । ॐ रुरु-मर्दिनि, असुर-क्षयङ्करि, आकाश-गामिनि ! पाशेन बन्ध बन्ध, अंकुशेन कट-कट, समयं तिष्ठ । ॐ मण्डलं प्रवेशय । ॐ गृह्ण, ॐ मुखं बन्ध, ॐ चक्षुर्बन्ध, हस्त-पादौ च बन्ध, दुष्ट-ग्रहान् सर्वान् बन्ध, ॐ दिशो बन्ध, ॐ विदिशो बन्ध, अधस्ताद् बन्ध, ऊर्ध्वं बन्ध । ॐ भस्मना पानीयेन वा मृत्तिकया सर्षपैर्वा सर्वान् आवेशय । ॐ पातय । ॐ चामुण्डे ! किलि किलि । ॐ विच्चे हुँ फट् स्वाहा ।।

पद-माला-जयाख्येयं, सर्व-कर्म- प्रसाधिका । सर्वदा होम-जप्याद्यैः पाठाद्यैश्च रणे जयः ।।

।। इति श्री आदि-अग्नि-पुराणे युद्ध-जयार्णवे श्रीसंग्राम-विजया-विद्या-माला-मन्त्रम् ।।

विधि—ग्रह-पीड़ा, सिर और आँख के रोगों व ज्वरों से ग्रस्त व्यक्ति को विद्या से तीन, पाँच या सात बार अभिमन्त्रित जल के छींटे मारें या भस्म, मिट्टी अथवा सरसों मारें । माला-मन्त्र से अभिमन्त्रित राई (लाल सरसों), श्मशान की राख अभिमन्त्रित कर शत्रु को मारें या उसके घर में फेंकें, तो वह परास्त हो, त्रस्त हो । अभिचार-नाश के लिए

पाठ करें। एक या तीन पाठ से अभिचार नष्ट होता है। नित्य पाठ करनेवाला कभी भी अभिचार से पीड़ित नहीं हो सकता। अभिचार का नाश या बिपरीत-चालन स्वतः होता रहता है। कुछ अतिरिक्त करने की आवश्यकता ही नहीं होती।

विशेष—वैसे तो नित्य-पाठ ही फल-दायक होता है, किन्तु यदि अयुत (दस हजार) पाठ का पुरश्चरण कर लिया जाय, तो ब्रह्मास्त्र-वत् कार्य-सिद्धि होती है। जिस कार्य के लिए सङ्कल्प करके एक हजार पाठ कर दिए जायँ, वह होता ही है। मारण, उच्चाटन तथा शान्ति-पुष्टि आदि सब काम पाठ मात्र से होते हैं, कर्मानुसार हवन से भी अभीष्ट-सिद्धि होती है।

—प्रस्तुत-कर्त्ता : श्रीभैरवानन्दनाथ, सागर (म० प्र०)

(८१)

सर्प-भय-निवारण के प्रयोग

यदि किसी को अपने आस-पास सर्पों का भय हो, तो इन प्रयोगों में से किसी एक अथवा सभी का उपयोग कर उक्त भय से मुक्त हो सकते हैं। पहले प्रयोग में निम्न मन्त्रात्मक पंक्तियों का पाठ किया जाता है—

नर्मदायै नमो प्रातः, नर्मदायै नमो निशि। नमोऽस्तु नर्मदे! तुभ्यं, त्राहि मां विष-सर्पतः॥
सर्पाय सर्प-भद्रं ते, दूरं गच्छ महा-विषम्। जनमेजय-यज्ञान्ते, आस्तिक्यं वन्दनं स्मर॥
आस्तिक्य-वचनं स्मृत्वा, यः सर्पो न निवर्तते। भिद्यते सप्तधा मूर्ध्नि, शिंश-वृक्ष-फलं यथा॥
यो जरुत्कारुण यातो, जरुत्-कन्या महा-यशाः। तस्य सर्पश्च भद्रं ते, दूरं गच्छ महा-विषम्॥

दोहाई राजा जनमेजय! दोहाई आस्तीक मुनि की! दोहाई जरुत्कार की।

सर्प-भय दूर करने के अन्य पाँच प्रयोग निम्न प्रकार हैं—

१ नीली सरसों हाथ में लेकर सरसों पर फूँक मारकर ३ बार हथेली पर ताली बजावे। ऐसे ही क्रिया करते हुए ७ बार सरसों घर में बिखेर दे।

२ हल्दी के धुवें से सर्प भागते हैं।

३ '**ॐ ह्रौं जूं सः**'—१००० जप नित्य। इससे सर्व रक्षा होती है।

४ बेल-पत्र पर अनार की कलम व देवी चन्दन से '**राम**' लिखकर शिव जी को चढ़ावे।

५ **शरणागत-दीनार्त**'''' **नमोऽस्तु ते**'—१०८ बार नित्य पाठ करें।

• प्रस्तुत-कर्त्ता : पं० कृष्णानन्द मिश्र वैद्य, प्रयाग

(८२)

दारिद्रय-दहन का विधान

विनियोग : ॐ अस्य दारिद्रय-दहन-विधानस्य श्रीशङ्कर ऋषिः । जगती छन्दः । श्रीमहा-लक्ष्मी भुवनेश्वरी देवता । श्रीं वीजं । ह्रीं शक्तिः । ऐं कीलकं । दारिद्रय-दहनार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास : श्रीशङ्कर-ऋषये नमः शिरसि । जगती - छन्दसे नमः मुखे । श्रीमहा-लक्ष्मी भुवनेश्वरी-देवतायै नमः हृदि । श्रीं बीजाय नमः गुह्ये । ह्रीं शक्तये नमः पादयोः । ऐं कीलकाय नमः नाभौ । दारिद्रय-दहनार्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

षडङ्ग-न्यास	कर-न्यास	अङ्ग-न्यास
श्रां	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः ।
श्रीं	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा ।
श्रूं	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट् ।
श्रैं	अनामिकाभ्यां हुम्	कवचाय हुम् ।
श्रौं	कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्	नेत्र-त्रयाय वौषट् ।
श्रः	करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट् ।

ध्यान : लक्ष्मी-क्षीर-समुद्र-राज - तनया श्री-रङ्ग-धामेश्वरी ।
दासी-भूत-समस्त-देव-वनितां लोकैक-दीपाङ्कराम् ।।
श्रीमन्मन्द-कटाक्ष-लब्ध-वियद्-ब्रह्मेन्द्र-गङ्गेन धराम् ।
वन्दे त्वां त्रैलोक्य-कुटुम्बनीं सरसिजां मुकुन्द-प्रियाम् ।।

मानस-पूजन कर 'कनक-धारा स्तोत्र' के श्लोकों में से प्रत्येक श्लोक से 'श्री-सूक्त' के प्रति श्लोक को सम्पुटित करके पाठ करें ।

—पं० कृष्णानन्द मिश्र

(८३)

श्रीनायिका-कवचम्

।। श्री उन्मत्त-भैरव उवाच ।।

शृणु कल्याणि ! मद्-वाक्यं, कवचं देव-दुर्लभं । यक्षिणी-नायिकानां तु, संक्षेपात् सिद्धि-दायकं ।।

हे कल्याणि ! देवताओं को दुर्लभ, संक्षेप (शीघ्र) में सिद्धि देनेवाले, यक्षिणी आदि नायिकाओं के कवच को सुनो–

ज्ञान-मात्रेण देवेशि ! सिद्धिमाप्नोति निश्चितं। यक्षिणी स्वयमायाति, कवच-ज्ञान-मात्रतः ॥

हे देवेशि ! इस कवच के ज्ञान-मात्र से यक्षिणी स्वयं आ जाती है और निश्चय ही सिद्धि मिलती है।

सर्वत्र दुर्लभं देवि ! डामरेषु प्रकाशितं। पठनात् धारणान्मर्त्यो, यक्षिणी-वशमानयेत् ॥

हे देवि ! यह कवच सभी शास्त्रों में दुर्लभ है, केवल डामर-तन्त्रों में प्रकाशित किया गया है। इसके पाठ और लिखकर धारण करने से यक्षिणी वश में होती है।

विनियोग : ॐ अस्य श्रीयक्षिणी-कवचस्य श्रीगर्ग ऋषिः। गायत्री छन्दः। श्री अमुकी यक्षिणी देवता। साक्षात् सिद्धि-समृद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास : शिरसि श्रीगर्ग-ऋषये नमः। मुखे गायत्री-छन्दसे नमः। हृदि श्री अमुकी-यक्षिणी-देवतायै नमः। सर्वाङ्गे साक्षात् सिद्धि-समृद्ध्यर्थे पाठे विनियोगाय नमः।

शिरो मे यक्षिणी पातु, ललाटं यक्ष-कन्यका। मुखं श्री धनदा पातु, कर्णौ मे कुल-नायिका ॥
चक्षुषी वरदा पातु, नासिकां भक्त-वत्सला। केशाग्रं पिङ्गला पातु, धनदा श्रीमहेश्वरी ॥
स्कन्धौ कुलालपा पातु, गलं मे कमलानना। किरातिनी सदा पातु, भुज-युग्मं जटेश्वरी ॥
विकृतास्या सदा पातु, महा-वज्र-प्रिया मम। अस्त्र-हस्ता पातु नित्यं, पृष्ठमुदर-देशकम् ॥

मेरे सिर की रक्षा यक्षिणी, ललाट (मस्तक) की यक्ष-कन्या, मुख की श्री धनदा और कानों की रक्षा कुल-नायिका करें। आँखों की रक्षा वरदा, नासिका की भक्त-वत्सला करे। धन देनेवाली श्री महेश्वरी पिङ्गला केशों के आगे के भाग की रक्षा करें। कन्धों की रक्षा कुलालपा, गले की कमलानना करें। दोनों भुजाओं की रक्षा किरातिनी और जटेश्वरी करें। विकृतास्या और महा-वज्र-प्रिया सदा मेरी रक्षा करें। अस्त्र-हस्ता सदा पीठ और उदर (पेट) की रक्षा करें ॥१-५

भेरुण्डा माकरी देवी, हृदयं पातु सर्वदा। अलङ्कारान्विता पातु, मे नितम्ब-स्थलं दया ॥
धार्मिका गुह्यदेशं मे, पाद-युग्मं सुराङ्गना। शून्यागारे सदा पातु, मन्त्र-माता-स्वरूपिणी ॥
निष्कलङ्का सदा पातु, चाम्बुवत्यखिलं तनुं। प्रान्तरे धनदा पातु, निज-बीज-प्रकाशिनी ॥
लक्ष्मी-बीजात्मिका पातु, खड्ग-हस्ता श्मशानके। शून्यागारे नदी-तीरे महा-यक्षेश-कन्यका ॥
पातु मां वरदाख्या मे, सर्वाङ्गं पातु मोहिनी। महा-सङ्कट-मध्ये तु, संग्रामे रिपु-सञ्चये ॥
क्रोध-रूपा सदा पातु, महा-देव-निषेविका। सर्वत्र सर्वदा पातु, भवानी कुल-दायिका ॥

हृदय की रक्षा सदा भयानक स्वरूपवाली माकरी देवी तथा नितम्ब-स्थल की रक्षा अलङ्कारों से सजी हुई दया करें। गुह्य-देश (गुप्ताङ्ग) की रक्षा धार्मिका और दोनों

पैरों की रक्षा सुराङ्गना करें। सूने घर (या ऐसा कोई भी स्थान, जहाँ कोई दूसरा आदमी न हो) में मन्त्र-माता-स्वरूपिणी (जो सभी मन्त्रों की माता—मातृका के स्वरूप-वाली हैं) सदा मेरी रक्षा करें। मेरे सारे शरीर की रक्षा निष्कलङ्का अम्बुवती करें। अपने बीज (मन्त्र) को प्रकट करनेवाली धनदा प्रान्तर (लम्बे और सूनसान मार्ग, जन-शून्य या वीरान सड़क, निर्जन भू-खण्ड) में रक्षा करें। लक्ष्मी-बीज (श्रीं) के स्वरूपवाली खड्ग-हस्ता श्मशान में और शून्य भवन (खण्डहर आदि) तथा नदी के किनारे महा-यक्षेश-कन्या मेरी रक्षा करें। वरदा मेरी रक्षा करें। सर्वाङ्ग की रक्षा मोहिनी करें। महान् सङ्कट के समय, युद्ध में और शत्रुओं के बीच में महा-देव की सेविका क्रोध-रूपा सदा रक्षा करें। सभी जगह सदैव कुल-दायिका भवानी मेरी रक्षा करें।

इत्येतत् कवचं देवि ! महा-यक्षिणी-प्रीतिदं। अस्यापि स्मरणादेव, राजत्वं लभतेऽचिरात् ॥
पञ्च-वर्ष-सहस्राणि, स्थिरो भवति भू-तले। वेद-ज्ञानी सर्व-शास्त्र-वेत्ता भवति निश्चितम् ॥
अरण्ये सिद्धिमाप्नोति, महा-कवच-पाठतः। यक्षिणी कुल-विद्या च, समायाति सु-सिद्धिदा ॥
अणिमा-लघिमा-प्राप्तिः सुख-सिद्धि-फलं लभेत्। पठित्वा धारयित्वा च, निर्जनेऽरण्यमन्तरे ॥
स्थित्वा जपेल्लक्ष-मन्त्रमिष्ट-सिद्धिं लभेन्निशि। भार्या भवति सा देवी, महा-कवच-पाठतः ॥

हे देवि ! यह कवच महा-यक्षिणी की प्रीति (प्रसन्नता) देनेवाला है। इसके स्मरण-मात्र से साधक शीघ्र ही राजा के समान हो जाता है। कवच का पाठ-कर्ता पाँच हजार वर्षों तक भूमि पर जीवित रहता है और अवश्य ही वेदों तथा अन्य सभी शास्त्रों का ज्ञाता हो जाता है। अरण्य (जङ्गल, वन) में इस महा-कवच का पाठ करने से सिद्धि मिलती है। कुल-विद्या यक्षिणी स्वयं आकर अणिमा, लघिमा, प्राप्ति आदि सभी सिद्धियाँ और सुख देती है। कवच (लिखकर) धारण करके तथा पाठ करके रात्रि में निर्जन वन के भीतर बैठकर (अभीष्ट) यक्षिणी के मन्त्र का १ लाख जप करने से इष्ट-सिद्धि होती है। इस महा-कवच का पाठ करने से वह देवी साधक की भार्या (पत्नी) हो जाती है।

ग्रहणादेव सिद्धिः स्यान्, नात्र कार्या विचारणा ॥१९

इस कवच को ग्रहण करने से सिद्धि मिलती है। इसमें कोई विचार करने की आव-श्यकता नहीं।

॥इति वृहद्-भूत-डामरे महा-तन्त्रे श्रीमदुन्मत्त-भैरवी-भैरव-सम्वादे यक्षिणी-नायिका-कवचम् ॥

वक्तव्य—यह कवच मेरे श्री गुरुदेव के संग्रह में मिला है। यही कवच 'तन्त्र-सार' में भी है, किन्तु कुछ भिन्नता है।

—श्रीभैरवानन्दनाथ, सागर (म० प्र०)

ईश्वर- प्राप्ति का मार्ग

'मन' के ऊपर अस्तित्व का प्रकाश पूर्ण रूप से पड़े, इस बात को और सरल रीति से समझ सकते हैं। जैसे, यदि किसी तालाब में पानी शान्त होगा, तो उसमें चन्द्र का प्रतिबिम्ब साफ दिखेगा और यदि पानी बाढ़ या पवन के दबाव से स्थिर नहीं होगा, तो उसमें चन्द्र की केवल लहरें ही दिखेंगी, पूरा चन्द्र नहीं दिखेगा। ठीक इसी प्रकार 'मन' - रूपी पानी के ऊपर यदि विषय - रूपी पवन का दबाव पड़ता होगा, तो 'मन' - रूपी पानी अस्थिर हो जाएगा और उसमें 'आत्मा'- रूपी चन्द्र का दर्शन नहीं होगा। व्यक्ति सदैव इस चन्द्र की रुपहली लहरों को सुख मानकर, पकड़ने को जाता है और उसके प्रयत्न में कभी बह भी जाता है। 'मन' यदि विषयों के भोग में न फँसे, तो इस **'मन'** - रूपी पानी में पूर्ण रूप से चन्द्र - दर्शन याने **आत्म - साक्षात्कार** होगा। 'मन' अस्तित्व के काश से भर जाएगा और सत्यासत्य का ज्ञान होकर आनन्द में लय हो जाएगा।

परन्तु यदि 'मन'- रूपी पानी मैला हो और चन्द्र का दर्शन भी हो, तो वह कैसा रहेगा ? इसका उत्तर यह है कि पवन के दबाव से नीचे का कीचड़ पानी में मिल जाने से पानी मैला होकर कीचड़ - जैसा दिखने लगता है। यदि पवन बन्द हो जाएगा, तो कीचड़ अपने - आप नीचे बैठ जाएगा और पानी स्वच्छ हो जाएगा। इसी प्रकार विषय - रूपी पवन का जोर यदि बन्द हो जाए, तो मैला दिखनेवाला 'मन' निर्मल बन जाएगा। इसलिए 'मन' को विषयों के चिन्तन से दूर रखना चाहिए।

☐ 'मन' को जिस वस्तु में लगाओगे, उसी में वह लग जाएगा। 'मन' को प्रभु में लगाने से वह तन्मय होकर, प्रभु का स्वरूप अपने सामने खड़ा कर देगा। यही **प्रभु - दर्शन** है। दर्शन 'मन' के कारण होता है। प्रभु साकार रूप से साधक के सामने दर्शन देने को नहीं आता। 'मन' जैसी कल्पना करेगा, वैसा ही उसको दर्शन होगा। ध्याता को अपने सामने ध्येय दिखे, वही दर्शन है। ध्याता को यदि ऐसा दर्शन होने लगे कि स्वयं वही ध्येय है, तो कह सकते हैं कि ध्याता ने ईश्वरत्व प्राप्त कर लिया।

☐ जैसे विभक्त माने है 'अलग किया हुआ', वैसे ही 'भक्त' माने है 'मिला हुआ'। 'भक्ति' माने किसी बड़ी चीज में अपना 'मन' अर्पित करना, मानों व्यापक में अपने अस्तित्व के मिलाने का प्रयत्न करना लेकिन प्रश्न यह है कि प्रभु, जो दीखता नहीं है, उसके साथ मिलकर एक - रस कैसे हो सकते हैं ? आत्मा का परमात्मा से मिलन कैसे हो ? इसका उत्तर यह है कि प्रभु से देह द्वारा नहीं मिल सकते, लेकिन 'मन' से मिला जा सकता है। 'मन' बहुत ही चंचल है। अतएव उसको 'भक्ति' द्वारा स्थिर करने का प्रयत्न करना चाहिए। जिस आराधना से 'मन' प्रभु - भावना में तल्लीन बनकर प्रभु - मय हो जाए, उसी का नाम भक्ति है।

'भक्ति' नौ प्रकार की होती है। उनमें से प्रत्येक प्रकार की 'भक्ति' मोक्ष को देनेवाली है।

१. राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से कथा सुनते - सुनते 'मोक्ष' पाया, यह **'श्रवण' भक्ति** थी।

२. श्री शुकदेव जी ने प्रभु का गुणानुवाद राजा परीक्षित को सुनाया, यह **'कीर्तन' भक्ति** थी।

३. प्रह्लाद प्रभु का स्मरण करते - करते प्रभु में एकाकार बन गए। यह **'स्मरण' भक्ति** थी।

४. लक्ष्मी जी पद - सेवा करते - करते एकाग्र हो गईं। यह **'सेवा' भक्ति** थी।

५. राजा पृथु पूजा करते - करते प्रभु - मय बन गए, यह **'पूजा' भक्ति** थी।

६. अक्रूर भगवान् का वन्दन करते - करते एकाग्र बन गए, यह **'अभिवन्दन' भक्ति** थी।

७. श्री हनुमान जी श्रीराम की सेवा करते - करते तल्लीन बन गए, यह **'दास्य' भक्ति** थी।

८. अर्जुन ने भगवान् कृष्ण की मित्र - भाव से भक्ति की। यह **'मित्र' भक्ति** थी।

९. राजा बलि ने भगवान् के प्रति सर्वस्वार्पण किया। उनके पास जो कुछ था, उसे भगवान् को **अर्पण** कर वे तद् - रूप बन गए। यह **'सर्वस्वार्पण' भक्ति** थी।

रजि० सं० ३२९८१/५७ JANUARY रजि०सं० ए०डी०१६

कौल-कल्पतरु 'चण्डी'

स्वर-विज्ञान

ज्योतिष-तन्त्र-योग की त्रिवेणी

रोग - निवारण के अनुभूत प्रयोग

!स्वर- विद्या द्वारा फलादेश

अनुकूलन - वशीकरण

अभीष्ट कार्य - सिद्धि

मनोवांछित सन्तान

स्वर का प्रवाह

स्वरोदय - काल

स्वर - विज्ञान

स्वर - परिचय

स्वर - साधना से विविध सिद्धियाँ

तत्व - ज्ञान स्वरोदय और योग

सूक्ष्म वायु - परिवर्तन - विज्ञान

दीर्घायु और चिर - यौवन

स्वरोदय और पुनर्जन्म

हठ- योग और स्वर

भाग्योदय नीरोगावस्था

शत्रु - वशीकरण

दाम्पत्य - सुख

स्वर - माहात्म्य

मूल्य मात्र १५/- रु०

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्रीऋतशील शर्मा, पराणी प्रेस, प्रयाग-२११ ००६